अमृता प्रीतम

पिंजर



स्टार बुक्स

कप्रिय
रीज़

अमृता प्रीतम

के

दो उपन्यास

पिंजर

एक खाली जगह

AMRITA PRITAM
PINJAR
TWO NOVELTIES
HINDI BOOK CENTRE
PRICE Rs. 25.00

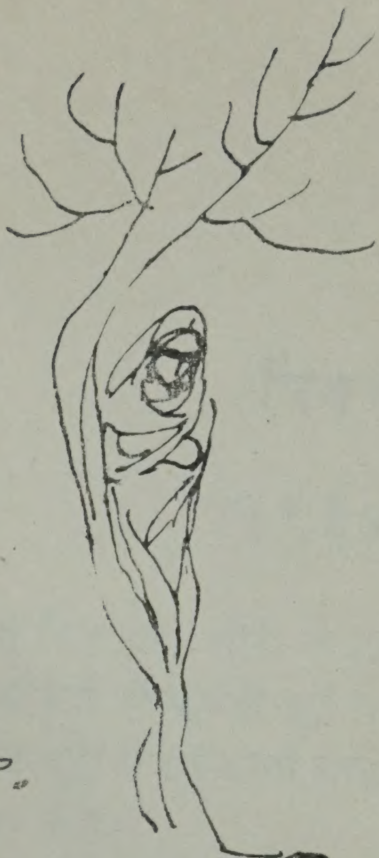
वितरक :
स्टार पब्लिकेशंज (प्रा०) लि०
नई दिल्ली

प्रकाशक :

हिन्दी बुक सेन्टर
4/5 बी, आसफ़ अली रोड, नई दिल्ली-110002

मूल्य : पच्चीस रुपये मात्र (25.00)

कुमार ऑफसेट प्रिंटिंग प्रेस, विश्वास नगर–दिल्ली-110032



पिंजर

दो उपन्यास

अमृता प्रीतम

पिंजर

१९३५

मटमैला दिन था। बोरी के टुकड़े पर बैठी पूरो मटर छील
ी थी। उंगलियों में पकड़ी हुई फली के मुंह को खोलकर जब
सने दानों को मुट्ठी में सरकाना चाहा, तो एक सफेद कीड़ा उसके
गूठे पर लग गया।

जैसे एकाएक कीचड़ भरे गड्ढ में पांव जा पड़ने पर एक
हरन-सी हो उठती है, वैसी ही सिहरन पूरो के सारे शरीर में दौड़
। हाथ झटकाकर उसने कीड़े को परे फेंक दिया और अपने
थों को अपने घुटनों में भींच लिया।

पूरो के सामने मटर की फलियां, निकाले हुए दाने और खाली
लके बिखरे पड़े रहे। उसने जोड़े हुए घुटनों के बीच में दोनों
थ निकालकर अपने कलेजे को थाम लिया। उसे लगा, मानो
से पांव तक उसका शरीर मटर की उस फली की भांति हो,
सके भीतर मटर के स्वच्छ दानों के स्थान पर कोई गन्दा कीड़ा
रहा है।

पूरो को अपने शरीर के अंग-अंग से घिन आने लगी। उसका
चाहा कि वह अपने पेट में पल रहे कीड़े को झटकार दे; उसे
ने शरीर से दूर झाड़ दे; ऐसे, जैसे कोई चुभे हुए कांटे को नाखूनों

में फंसाकर निकाल देता है, जैसे कोई धंसे हुए गोखरू को उखाड़
फेंक देता है, जैसे कोई चिपटी हुई किलनी को नोचकर अलग
देता है, जैसे कोई चिपटी हुई जोंक को तोड़ फेंकता है।

पूरो सामने दीवार की ओर देखने लगी। बीते हुए
एक-एक करके वहां से गुज़र रहे थे।

पूरो गुजरात ज़िले के एक गांव छत्तोआनी के शाहों की बे
थी—शाह, जिनका साहूकारे का काम कब का बन्द हो चुका
किन्तु फिर भी वह कहलाते शाह ही थे। समय के कुचक्र से शा
के उस घर का यह हाल हो गया कि देग और कंडाल जैसे उन
बड़े-बड़े बर्तन भी बिक गए—वे बर्तन, जिनपर उनके पूर्वजों
नाम खुदे हुए थे। प्रति दिन की इस जीती-जागती ग्लानि से बचने
लिए पूरो के पिता और चाचा अपना गांव छोड़कर सियाम च
गए। वहां उनके दिन पलक मारते ही पलट गए।

उन दिनों पूरो दौड़ती फिरती थी और उसकी मां की गोद
एक लड़का था। उजड़े हुए शाहों का यह परिवार फिर अपने गा
छत्तोआनी आया। पूरो के पिता ने अपना गिरवी पड़ा हुआ मका
छुड़वाकर अपने बाप-दादों के नाम की लाज रख ली। यद्या
उसके पिता को नया मकान बनवाने में इससे भी कम पैसे खरच
पड़ते, पर उसने अंधाधुंध लगाए हुए ब्याज की भी परवाह न
और एक बार दांत भींचकर अपने पूर्वजों के नाम की रक्षा कर ली

अनाज, चारा और अन्य वस्तुओं की ठीक-ठीक व्यवस्
करके वह सियाम चले गए, किन्तु उनका मकान, उनका नाम
उनके पीछे गांव में रहता रहा। अगली बार जब वह अपने गां
लौटे, उस समय पूरो पूरे चौदह वर्ष की थी। उससे छोटा उसक
एक भाई था, उससे छोटी पूरो की ऊपर तले की तीन बहनें थी
और अब के पूरो की मां को छठी बार फिर किसी बच्चे की उम्मी
थी।

शाहों के उस परिवार ने गांव आकर पहला काम किया कि पास के गांव रत्तोवाल के एक अच्छे खाते-पीते घर में पूरो के लिए लड़का देखा। पूरो की मां सोचती थी कि जब वह नहा-धोकर उठेगी तो बड़े चाव से पूरो का काज आरम्भ करेगी। इस बार वे पक्की तरह सोचकर आए थे कि इस भार को उतारकर ही लौटेंगे।

पूरो की होने वाली ससुराल में उन दिनों तीन दुधार पशु थे, और गांव में उनका मकान पहला था जिसके ऊपर की पक्की ईंटों की बरसाती बनी हुई थी। मकान के माथे पर उन्होंने 'ॐ' लिखवाया हुआ था। लड़का सूरत का अच्छा और बुद्धिमान दीख पड़ता था।

पूरो के पिता ने पांच रुपये और गुड़ की भेली देकर लड़का रोक लिया था। उन दिनों गुजरात ज़िले में अदला-बदली के सम्बन्ध होते थे। जिस लड़के से पूरो की सगाई हुई, उस लड़के की बहन की सगाई पूरो के भाई के साथ की गई, यद्यपि पूरो का भाई उस समय मुश्किल से बारह बरस का था और उसकी मंगेतर बहुत ही छोटी थी।

दो-दो बरस के अन्तर से ऊपर तले तीन लड़कियों को जन्म देने के कारण पूरो की मां का मन क्षुब्ध-सा हो गया था। अब जबकि उनके दिन फिर गए थे, घर में मन-भर खाने को था, जी-भर पहनने को था, उसका मन करता था कि उसके फिर एक लड़का हो।

इस बार आकर पूरो की मां ने दूसरा काम यह किया कि विधिमाता की पूजा की। गांव की कुछ स्त्रियों ने पूरो के घर के आंगन में गोबर की एक गुड़िया बनाई, लाल चुनरी के किनारी लगाकर उसे उस गुड़िया के सिर पर उढ़ा दिया, दो माशे सोने की छोटी-सी नथ बनवाकर उसकी नाक में डाली, और सबने मिलकर गाया :

बिधमाता रुस्सी आवीं ते मन्नी जावीं,
बिधमाता रुस्सी आवीं ते मन्नी जावीं।

उनके अपने गांव में और आसपास के गांवों में स्त्रियों का यह विश्वास था कि प्रत्येक बालक के जन्म के समय विधिमाता स्वयं आती है। यदि विधिमाता अपने पति से हंसती-खेलती आती है तो आकर झटपट लड़की बनाकर चली जाती है, क्योंकि उसे अपने पति के पास लौटने की जल्दी होती है। किन्तु यदि विधिमाता अपने पति से रूठकर आती है तो उसे लौटने की कोई विशेष जल्दी तो होती नहीं, वह आकर बहुत समय तक बैठती है और आराम से लड़का बनाती है। तो सब स्त्रियों ने मिलकर फिर गाना आरम्भ किया :

बिधमाता रुस्सी आवीं ते मन्नी जावीं,
बिधमाता रुस्सी आवीं ते मन्नी जावीं।

विधिमाता शायद कहीं पास ही सुन रही थी, उसने उनका कहा मान लिया। पन्द्रह-सोलह दिन बाद पूरो की मां के लड़का हो गया। शाहों के दूर-पार के सम्बन्धियों को भी बधाइयां मिलने लगीं। चिन्ताजनक केवल एक बात थी, और वह यह कि लड़का तेलड़ था। तीन बहनों पर भाई हुआ था। पूरो की मां को बड़ी चिन्ता थी, राम करे, किसी प्रकार लड़का बच जाए, और बच जाए तो माता-पिता को भारी न हो। विधमाता को मनानेवाली स्त्रियां फिर एक बार इकट्ठी हुईं और कांसी के एक बड़े-से थाल के बीच में बड़ा-सा छेद करके लड़के को उसमें से आरपार निकाला, साथ में गाती रहीं :

त्रिखलां दी धाड़ आयी,
त्रिखलां दी धाड़ आयी।

तीन लड़कियों के दल के बाद ईश्वर की कृपा से उत्पन्न हुए लड़के के सारे शगुन मनाकर अब सबको विश्वास हो गया कि लड़का बच जाएगा।

पन्द्रहवां वर्ष आरम्भ होते-होते पूरो के अंग-प्रत्यंग में एक हुलार-सा आ गया। पिछले बरस की सारी कमीज़ें उसके शरीर पर तंग हो गईं। पूरो ने पास की मंडी से फूलों वाली छींट लाकर नये कुरते सिलवाए। कितना सारा अबरक लगाकर चुनरियां तैयार

कीं।

पूरो की सहेलियों ने उसे दूर से उसका मंगेतर रामचन्द दिखा देया था। पूरो की आंखों में उसकी छवि पूरी की पूरी उतर गई थी। उसका ध्यान आते ही पूरो का मुंह लाल हो जाता था।

पूरो निःशंक होकर बहुत कम ही बाहर निकल सकती थी, क्योंकि पास के गांववालों का इस गांव में आना-जाना बहुत रहना था। उसकी ससुराल के गांववाले कहीं पूरो को देख न लें, इस बात से पूरो बहुत डरती थी, और फिर वह गांव बहुत करके मुसलमानों का हो गया था।

वैसे जरा दिन ढले पूरो और उसकी सहेलियां खेतों में घूम-फिर आती थीं। कई बार पूरो अपने खेतों के पास से गुज़रती हुई कच्ची सड़क के आसपास अटक रहती, कभी कोई साग चुनने बैठ जाती, कभी किसी बेरी के पेड़ से लगकर खड़ी हो जाती, बेर गिराती, उन्हें चुनती और सहेलियां को बातों में लगाए रखती। वह सड़क उसकी होनेवाली ससुराल को जाती थी।

मन ही मन वह सोचती, यदि उसका मंगेतर आज इधर से गुज़र जाए! वह उसे गुज़रते हुए एक बार देख ले! पूरो का दिल उस सड़क के किनारे खड़े होते ही धक्-धक् करने लगता। फिर सारी रात पूरो अपने युवा मंगेतर के स्वप्नों में मग्न रहती।

एक दिन पूरो की नई जूती उसकी एड़ी में बहुत लग रही थी। सहेलियों के साथ चलते वह पीछे रह-रह जाती थी। पूरो और उसकी सहेलियां खेतों में से होकर घर लौट रही थीं। सांझ का अंधकार पिघले हुए सिक्के की भांति चारों ओर बिखर गया था। लड़कियां खेतों की डौल-डौल चलती अब गांव की पगडंडी पर आ गई थीं। यह पगडंडी कहीं चौड़ी और खुली हुई खाली भूमि पर होकर जाती थी और कहीं कुछ पेड़ों, पीपलों और झाड़ियों के साथ-साथ मानों उनकी बांह पकड़-पकड़कर आगे बढ़ती थी। सब लड़कियां आगे-पीछे इसी पगडंडी पर चली आ रही थीं। पूरो ज़रा पीछे रह गई थी। दायें पांव की एड़ी के पास एक बड़ा-सा

छाला उभर आया था। पूरो ने तंग जूती दोनों पैरों से उतारकर हाथों में ले लीं ओर पांव तेज़ी से बढ़ाने लगी।

लड़कियां पूरो से कहा करती थीं कि उसका दायां पैर बायें पैर से भारी था, इसलिए उसके दाहिने पैर में जूती लगती थी। इसी तरह पूरो का दायां हाथ भी बायें हाथ से भारी था। 'हां जी, चूड़ी पहनते हुए पता चलेगा', कहकर लड़कियां पूरो को छेड़ा करती थीं। पूरो की आंखों के सामने आ गया, मानो सच्चे हाथीदांत की लाल चूड़ियां उसके हाथों में पहनाई जा रही हैं। पिछली बड़ी-बड़ी खुली खुली चूड़ियां पहनाने के बाद आगे की छोटी चूड़ियां उसके दायें हाथ में फंस गई हैं। नाई ने तेल से उसके अंगूठे की हड्डी को मला और हाथीदांत की लाल चूड़ी को उसके हाथ में ज़ोर से धकेलने लगा। पूरो को खयाल आया, कहीं उसकी हाथीदांत की लाल चूड़ी उसके दाहिने हाथ में टूट जाए तो! पूरो के कलेजे को एक धक्का-सा लगा। यह शगुन कितना बुरा है! उसकी शगुन की चूड़ी, उसके सुहाग की चूड़ी उसके हाथों में क्यों टूटे! पूरो ने अपने दाहिने हाथ को तिरस्कार से देखा। भगवान! उसका मंगेतर युग-युग जिए! हज़ार-लाख वर्ष जिए! पूरो के हृदय ने कामना की। फिर पूरो को याद आया, उसके गांव में चूड़ा चढ़ाते समय एक लड़की की चूड़ी सचमुच टूट गई थी। पास खड़ी हुई स्त्रियां 'राम, राम' कहकर भगवान से उसके पति की कुशल-याचना करने लगी थीं। फिर सुनार से सोने का एक पतला-सा तार टूटी हुई चूड़ी में पुरवाकर उस लड़की को फिर वही चूड़ी पहनाई थी, मानो उन्होंने उसके पति की टूटी हुई जीवनडोरी को जोड़ लिया हो।

पूरो इन्हीं शगुन-अपशगुन के विचारों में फंसी हुई थी कि बायें हाथ की ओर से पीपल के पीछे से एक व्यक्ति निकलकर पूरो के सामने खड़ा हो गया। पूरो के कलेजे पर मानो हथौड़ा-सा पड़ा। पूरो ने जल्दी से देखा, उसके गांव का जवान लड़का रशीद उसके सामने खड़ा था। रशीद की आयु बाईस-चौबीस वर्ष की होगी। उसकी भरी हुई जवानी उसके मुंह पर प्रत्यक्ष बोल रही थी।

पूरो ने देखा, रशीद की दोनों बड़ी-बड़ी आंखें पूरो के मुंह पर गड़ी हुई हैं। वह कांप उठी। उसके मुंह से एक हलकी-सी चीख निकली और वह रशीद के पास से बचती हुई भाग खड़ी हुई।

पूरो भागती-भागती लड़कियों के साथ जा मिली। अब वह अपने घरों के पास पहुंच गई थी। पूरो की सांस ठिकाने न थी। इतना ही भला हुआ कि रशीद ने उसके हाथ न लगाया, रशीद ने उससे मुंह से कुछ न कहा।

"अरी, लड़का था या कोई शेर था!" सहेलियों ने उससे ठठोली की, किन्तु अभी तक पूरो की जान में जान नहीं आई थी।

"शेर तो सिर्फ फाड़कर खा जाता है, कहते हैं कि अगर रीछ को कोई औरत अकेली मिल जाए तो वह उसे मारता नहीं, उठाकर ले जाता है। अपनी गुफा में ले जाकर उसको अपनी स्त्री बना लेता है।" सहेलियों में से एक ने यह बात सुनाई।

पूरो की जान फिर सूखने लगी। हाय, उस करमों जली का क्या हाल होगा, जिसे रीछ अपनी स्त्री बना ले! यह सोच-सोचकर पूरो का रंग उड़ने लगा। पूरो को फिर रशीद की फैली-फैली आंखें याद आ गईं।

अब पूरो अपने घर पहुंच गई थी। सहेलियां हंसती-बोलती आगे बढ़ गईं।

दूसरे दिन जब पूरो और उसकी सहेलियां खेतों में सींगरे तोड़ रही थीं, जल्दी से पूरो दो मुट्ठी सींगरे पास ही चलते हुए रहंट पर धोने ले गई। छोटे-छोटे सींगरों की डंडियां तोड़कर दो-चार सींगरे पूरो ने अपने मुंह में डाल लिए। तभी उसने देखा कि पास के पेड़ के साथ रशीद खड़ा हुआ है। उसकी टांगों में से मानो किसी ने जान ही खींच ली। भय उसके मुंह पर छा गया।

"अजी डरती क्यों हो? हम तो तुम्हारे चाकर हैं।" आज रशीद बोल उठा। उसके मुंह से शरारत टपक रही थी।

पूरो को ऐसा लगा, जैसे अभी रशीद रीछ के चौड़े पंजे की भांति उसके मुख पर झपट पड़ेगा, उसकी लम्बी-लम्बी उंगलियां

रीछ के नाखूनों की भांति उसकी गर्दन के चारों ओर फैल जाएंगी। फिर वह उसे खींचता हुआ ले जाएगा और फिर...फिर...?
फाइल बी

सौभाग्यवश पूरो ने देखा, सामने से दो किसान चले आ रहे हैं। रशीद वैसे का वैसा ही खड़ा था। पूरो लाल टमाटरों से भरी हुई क्यारी के ऊपर से छलांग मारकर जल्दी-जल्दी पांव फेंकती सहेलियों से जा मिली।

उस दिन पूरो बहुत निढाल-सी रही। सारे रास्ते लड़कियों का हाथ पकड़-पकड़कर चलती रही। परछाइयों से भी कांप-कांप उठती, ज़रा-ज़रा-सी खड़खड़ाहट से भी चौंक-चौंक उठती।

पूरो ने न तो कुछ अपनी मां को बताया, न अपने पिता को। उसकी सहेलियां कहती थीं, भला यह भी मां-बाप से कहने की कोई बात है! जवान लड़कियों को रास्ता चलते शोहदे सदा से ही ताकते-झांकते आए हैं। मुंहज़बानी कभी उनके गुलाम बनते हैं, कभी अपने-आपको उनका चाकर कहते हैं, ऐसे ऊलजलूल बकते ही आए हैं। वे बका करें, भला कोई कुत्तों के भौंकने से डरकर सड़कों पर चलना छोड़ देता है!

उस दिन उनके गांव में एक छः-सात बरस के लड़के को एक पागल कुत्ते ने काट खाया। गली-मोहल्ले की स्त्रियों ने मिलकर लड़के के घाव पर लाल मिरचें बांध दीं। मिरचों की तेज़ी से कुत्ते के दांतों का ज़हर कट जाता है। पूरो ने जब यह खबर सुनी तो तुरन्त ही उसके मन में विचार आया कि वह लाल मिरचें कूटकर रशीद की आंखों में झोंक दे। जितना वह रशीद की आंखों के सम्बन्ध में सोचती थी, उतना ही उसे ज़हर चढ़ता था।

सहेलियां पूरो की बांहें पकड़कर खींचती थी, पर पूरो को साहस न होता था कि वह खेतों की ओर जाए।

और फिर अब पूरो का विवाह भी दिन-दिन पास आ रहा था। पूरो के पिता ने घी और मैदा इकट्ठा करके घर में धर लिया

। पूरो की मां ने पीले रेशम से कढ़ी हुई लाल फुलकारियों से लकड़ी का सन्दूक भर लिया था। सियाम से लाए हुए रेशमी जोड़ों से उसने दहेज वाला सफेद ट्रंक मुंह तक भर दिया था। चुनरियों की छोटी बांकड़ी चुन-चुनकर उसके पोरवे दुखने लगे थे। पिछली ओर का भीतरवाला कमरा, जहां उसने पूरो के दहेज के लिए पीतल के पूरे इक्यावन बर्तन जोड़े थे, झमाझम कर रहा था। उन दिनों देहातों में क्रोशिए के काम का बड़ा चलन था। पूरो ने क्रोशिए से बनाए हुए फूल जोड़-जोड़कर पलंग की पूरी चादर बनाई थी। दसूती के तार गिन-गिनकर उसने फूल काढ़ने सीखे थे। अपने हाथ से अपने दहेज के लिए डलिया और मूढ़े बनाए थे।

एक दिन पालक के नरम-नरम पत्तों को तोड़कर पूरो ने साग काटा। पूरो की मां सुतली की बुनी हुई पीढ़ी पर बैठी अपने लड़के को दूध पिला रही थी। पूरो ने मिट्टी की हंडिया को बान के छोटे-से गुच्छे से अच्छी तरह मांजा, फिर साग को पानी से दो-बार धोकर और उसमें चने की दाल मिलाकर हंडिया को मुंह तक भर दिया। हारे की मीठी-मीठी आग पर दूध पड़ा कढ़ रहा था। पूरो ने चूल्हे में दो-चार छिपटियां लगाकर साग चढ़ा दिया।

पूरो का विवाह अब बस बिलकुल पास आ गया था। पूरो की मां को प्रतीक्षा थी कि कौन जाने आज या कल पूरो की ससुराल से कोई नाप लेने ही आ जावे। पूरो कितनी सुन्दर सुघड़ लड़की है! रोटी टुकड़ा तो वह आंगन में इधर से उधर चलते-फिरते ही कर लेती है। पूरो की सहेलियां कहती थीं कि पूरो को जवानी भी तो भरपूर चढ़ी है। पूरो के गोरे निर्मल मुख पर आंख ठहरती न थी। पूरो की मां ने एक चाहतभरी दृष्टि से पूरो की ओर देखा, शायद वह सोचती थी कि पूरो अब ससुराल चली जाएगी, पूरो के मायके का घर भांय-भांय करेगा। पूरो अपनी मां का दाहिना हाथ थी। मां की आंखों में आंसू भर आए। हर बेटी की मां को रोना पड़ता है। बैठी-बैठी पूरो की मां गाने लगी :

लावीं ते लावीं नी कलेजे दे नाल माए,
दस्सीं ते दस्सीं इक बात नीं।
बातां ते लम्मीयां नी धीयां क्यों जम्मियां नीं,
अज्ज विछोड़े वाली रात नीं।

पूरो की मां का कलेजा भर आया। पूरो चौके के छोटे-छोटे काम निबटाती हुई अपनी मां की आवाज़ सुन रही थी। पूरो के दिल में बिछोड़े की एक हौल-सी उठी। पूरो की मां आगे गाने लगी :

चरखा जु डाहनीयां मैं छोपे जु पानीयां मैं,
पिड़ियां ते वाले मेरे खेस नीं।
पुत्रां नू दित्ते उच्चे महल ते माड़ियां
धीयां नू दित्ता परदेस नीं।

पूरो दौड़ी-दौड़ी आकर मां के गले से लिपट गई। मां-बेटी दोनों रो पड़ीं। हर लड़की का यौवन उसे अपनी मां से अलग कर देता है।

पूरो की मां ने जी कड़ा किया। बेटी के कंधे पर प्यार किया। संध्या समय का अन्धकार उनके आंगन में भी उतर आया था। पूरो की मां को याद आया कि दूसरी चीज़ चढ़ाने को इस समय घर में कुछ भी नहीं थी, कौन जाने पूरो की ससुराल से कोई आदमी आता ही हो।

पूरो से उसने कहा कि छोटी बहन की उंगली पकड़कर पास के खेतों में से चार भिंडियां ही तोड़ ला। और चावलों की एक मुट्ठी और गुड़ की भेली डालकर मीठे चावल भी चढ़ा दे।

पूरो का दिल भी आज भर-भर आता था। उसने अपनी छोटी बहन को साथ लिया और बाहर चली गई।

पूरो ने भिंडियां तोड़ीं, दो-चार सींगरे तोड़े और उलटे पांव छोटी बहन को साथ लेकर घर की ओर चली। लौटते समय पूरो को केवल यह विचार आ रहा था कि अब वह अपनी मां से अलग हो जाएगी, अपनी बहनों से बिछुड़ जाएगी, अपने नन्हें-से भाई से दूर चली जाएगी। वज्र के प्रहार के समान पूरो को एकाएक खयाल

आया, यदि यहां रशीद मिल जाए तो?

और वह पांव उठाकर चलने लगे। ''पूरो, दौड़ क्यों रही है?'' पूरो की छोटी बहन की सांस चढ़ गई थी।

पूरो के पीछे की ओर से एक घोड़ी दौड़ती हुई आई। पूरो अभी पगडंडी से हट भी न पाई थी कि न जाने घोड़ी या घुड़सवार कौन पूरो के दाहिने कंधे से टकरा गया। पूरो गिरने ही लगी थी कि किसी ने उसे कंधे से पकड़कर घोड़ी के ऊपर डाल लिया। पूरो की चीखें उड़ती हुई घोड़ी के साथ पल-पल दूर होती चली गईं। उसकी बहन खड़ी कांपती रह गई।

न ज़ाने वह घोड़ी कहां से आई थी, उसका सवार कौन था, घोड़ी कितनी देर तक दौड़ती रही, पूरो अचेत थी।

पूरो को जब होश आया, वह एक कमरे में चारपाई पर पड़ी थी। चारों ओर दीवारें थीं, सामने एक बन्द दरवाज़ा।

पूरो को सब कुछ याद आ गया। उसने दीवारों से अपना सिर दे-दे मारा, उसने दरवाज़े से अपना सिर दे-दे मारा।

हार-थक के पूरो चारपाई पर आ पड़ी। वह फिर अचेत हो गई।

पूरो को जब होश आया, कोई उसके सिर पर गरम घी मल रहा था। पूरो ने एक बार सोचा, शायद उसकी मां उसके सिरहाने बैठी हुई थी और पूरो को बहुत तेज़ बुखार चढ़ा था।

''ओ मां,!'' पूरो के मुख से निकला।

''मेरी गलती माफ कर और एक बार होश में आ, पूरो!'' किसी ने सिरहाने की ओर से कहा।

ज्वर से जलती हुई पूरो ने सिर उठाकर देखा, रशीद उसके सिरहाने बैठा था। पूरो की एक चीख निकली और वह मूर्च्छित हो गई।

पूरो ने देखा, काली खाल वाला एक रीछ उसके बालों में अपने पंजे फेर रहा है, पूरो एक गुफा में पड़ी है, वह सिकुड़ती जाती है, रीछ फैलाता जाता है, रीछ ने अपनी बालों वाली बाहों में पूरो

को लपेट लिया है।

पूरो ने आंखों फाड़-फाड़कर देखा, कोई उसके पैरों के तलवे मल रहा था। फिर किसी ने उसके कन्धों को दबाया। फिर किसी ने उसके मुंह में चुल्लू भर-भर पानी डाला।

रीछ की गुफा या रशीद का घर? पूरो के सिर में चक्कर आ रहे थे। फिर शायद पूरो सो गई।

पूरो को अपनी मां, अपना गांव सभी कुछ याद था। वैसे उसे लगता था कि उस गुफा में पड़े-पड़े उसे कई वर्ष हो गए हैं। रशीद की सूरत देखने की उसे आदत हो गई थी। न रशीद ने उससे कभी कुछ कहा, न उसने रशीद को बुलाया। सोती हुई पूरो के मुंह में रशीद गर्म किया हुआ गुड़ और घी चमचे से डाल देता था। कभी कुछ पूरो के गले के नीचे उतर जाता था, कभी पूरो थूक डालती थी।

फिर पूरो ने साहस करके दीवार के साथ पीठ लगाई और चारपाई पर बैठ गई।

''मैं कहां हूं?'' पूरो ने कहा।

''मेरे पास।'' रशीद चारपाई के सामने एक स्टूल पर बैठा था। रशीद का मुख झुका हुआ था। आज उसकी आंखें फट-फटकर पूरो के मुख पर नहीं पड़ रही थीं।

''तू मुझे यहां क्यों लाया है?'' पूरो को पूछने का साहस हुआ।

''फिर कभी बताऊंगा।'' रशीद ने इतना ही कहा और उठकर बाहर चला गया। पूरो गुमसुम चारपाई पर पड़ी रही।

इस समय कमरे का दरवाज़ा खुला हुआ था। पूरो ने देखा, बाहर एक छोटा-सा दालान है, दालान के साथ ही एक छोटी-सी ड्योढ़ी है, और फिर बाहर का दरवाज़ा।

पूरो कांपते-कांपते उठी। उसने चारों ओर दीवारों को देखा। वह डर रही थी, अभी इन दीवारों में से कोई निकल आएगा, उसकी बांहें पकड़कर चारपाई पर डाल देगा! किन्तु दीवारों में से कोई न निकला। पूरो बाहर के दालान में आ गई।

आंगन के एक कोने में चूल्हे में आग बुझी हुई थी। पास ही एक हांडी और तवा-परात बिखरे पड़े थे। पानी का एक घड़ा भरा हुआ कोने में पड़ा था! पर कोई आदमी कहीं नज़र नहीं आता था।

पूरो कांपते पैरों से ड्योढ़ी में आई, बाहर के दरवाज़े के पास आई, फिर पीछे मुड़कर कोठड़ी की ओर देखा, फिर दरवाज़े के पास को हो गई।

पर मकान का दरवाज़ा पूरो के भाग्य की भांति बन्द पड़ा था। पूरो ने बन्द दरवाज़े के साथ अपना सिर लगा दिया, पर दरवाज़े को न पूरो के झुके हुए सिर पर तरस आया, न मुरझाए हुए चेहरे पर, न भीगी हुई आंखों पर।

पल्ले से मुंह पोंछकर पूरो दरवाज़े से लौट आई। घड़े में से पानी का एक चुल्लू भरकर पूरो ने अपनी आंखों पर डाला। फिर पूरो को विचार आया कि वह दरवाज़ा पीटकर देखे, शायद कोई अड़ोसी-पड़ोसी या रास्ता चलता उसकी आवाज़ सुन ले।

पूरो ने आंगन की कच्ची ऊंची दीवारों की ओर देखा, फिर एक बार साहस जुटाकर दरवाज़े को पीटना आरम्भ कर दिया। पूरो ने दरवाजों की दरजों के बीच से देखा, बाहर खुला मैदान ही मैदान था, कोई मकान, कोठड़ी दिखाई नहीं देती। पूरो सोच-सोचकर थक गई, न जाने वह किस जंगल में थी।

पूरो दरवाज़े के पास ही खड़ी थी कि बाहर से दरवाज़ा खुला। रशीद ने भीतर आकर दरवाज़ा बन्द कर लिया और ताला लगा दिया। पूरो वहीं की वहीं बैठ गई।

"पूरो! क्यों व्यर्थ में हवा से टक्करें मारती है! भीतर चल, कुछ अपने मुंह में डाल, तूने दो दिन से कुछ नहीं खाया है।" रशीद ने खड़े-खड़े कहा। वैसे न उसने पूरो का हाथ पकड़कर उसे उठाया न उसकी ओर आंखें फाड़-फाड़कर देखा।

"मुझपर दया कर, रशीद! मुझे घर छोड़ आ।" पूरो उसके पैरों पर गिर पड़ी।

इस बार रशीद ने पूरो को अपनी लाठी जैसी जवान बांहों में

उठा लिया और गठड़ी बनी हुई पूरो को कसकर अपनी छाती लगा लिया।

"मेरे दिल की आग कौन बुझाएगा?" रशीद ने हाथ-मारती हुई पूरो को अपनी बांहों में कसे रखा।

वह दिन भी बीत गया, रात भी बीत गई। रशीद ने उ फिर कुछ नहीं कहा। दरवाज़ा वैसे का वैसे बन्द था, रशीद वैसे वैसा ही पहरे पर था।

रशीद उस घर से बाहर भी जाता। घंटे-दो घंटे बाहर लगा आता। पूरो कैद रहती। फिर तारों की छांह में पूरो का ह पकड़कर रशीद उसे घर से बाहर ले जाने लगा। पूरो ने देखा, उ घर के सिवा उस लम्बे-चौड़े मैदान में और कोई घर नहीं थ रशीद के इस मकान के पास एक बहुत दूर तक फैला हुआ बा था। शायद यह घर बाग के मालियों का घर हो। बाग में मा अवश्य होंगे, पर पूरो ने उन्हें कभी देखा न था, न उनकी आवा ही सुनी थी। न तो पूरो के दिन ही बीतते थे, न उसकी रातें ही का कटती थीं। पूरो को केवल यही सन्तोष था कि रशीद ने उसे को बुरी-भली बात नहीं कही थी। पूरो की मर्यादा अभी तक बची हु थी। यह और बात थी कि रशीद पर न पूरो की प्रार्थनाओं का अस होता था, न पूरो की गालियों का।

पूरो के अपने अनुमान के अनुसार उसे कैद हुए पूरे पन्द्र दिन हो गए थे।

एक दिन रशीद ने लाल रेशम का एक जोड़ा पूरो के सामने लाकर रखा। इससे पहले भी रशीद ने पूरो को बदलने के लिए द जोड़े सूती कपड़ों के लाकर दिए थे। पर इस बार रशीद ने लाल रेशम का जोड़ा पूरो के आगे रखते हुए कहा, "कल सवेरे नहा-धोकर तैयार हो जाना, मौलवी आकर हमारा निकाह पढ़ा देगा।"

पूरो का दिल धक् से हो गया। जो अब तक नहीं हुआ है, क्या अब होकर ही रहेगा!

उस दिन पूरो फिर रशीद के पैरों पर गिर पड़ी।

पूरो! होनाहवाना कुछ नहीं। व्यर्थ मेरे सिर पर गुनाहों का बोझ न लाद। कसम है अल्लाह पाक की, मुझसे तेरा यह रोना नहीं देखा जाता।" रशीद ने मुंह परे करके कहा।

पूरो की समझ में न आता था कि रशीद यदि ऐसा दयावान ही था, तो उसने उसके सिर पर विपत्ति का यह पहाड़ क्यों डाल दिया?

"तुझे अपने अल्लाह की कसम है, रशीद! सच-सच बता, तूने मेरे साथ ऐसी क्यों की है?"

"पूरो! तेरा-मेरा सम्बन्ध कोई पिछला लेना-देना ही है। अब तूझे इन बातों से क्या मिलेगा? जो हो गया, सो हो गया। मैं तुझे सारी उम्र तकलीफ न होने दूंगा।"

पूरो हैरान थी, परेशान थी, यह कैसा आदमी है! "पूरो! हमारे शेखों के घराने में और तुम्हारे शाहों के घराने में दादा, पड़दादा के समय से एक बैर चला आ रहा है। तेरे दादा ने पांच सौ रुपये में गिरवी रखे हुए मकान पर ब्याज दर ब्याज लगाया था और कुर्की कराकर शेखों के घराने को घर से बेघर किया था। सिर्फ इतना ही नहीं, उनके मुंशियों-कारिन्दों ने हमारे घर की औरतों को बोल-कुबोल कहे और मेरे दादा की बड़ी लड़की को ज़बरदस्ती तेरे दादा के बड़े लड़के ने तीन रात घर में रखा। मेरे दादा के देखते-देखते यह सब हुआ। पर उस समय शेखों का घराना पेरे हुए गन्ने की भांति था। सब खून के आंसू पीकर रह गए! पर मेरे दादा ने मेरे चाचा-ताउओं को और मेरे पिता को कुरान उठवाकर कसमें दिलवाई थीं कि वे इसका बदला लेकर ही रहेंगे। उसकी अगली पीढ़ी के समय बात सो गई। अब जब तेरा काज इसी गांव में रचा जाने लगा, मेरे चाचा-ताउओं के लहू में पुराना बदला खौलने लगा। उन्होंने मुझे कसमें दिलाईं, मेरे लहू को ललकारा और मुझसे कौल कराए कि मैं शाहों की लड़की को ब्याह से पहले किसी भी दिन उठा ले जाऊं।" रशीद चुप हो गया।

पूरो धैयपूर्वक अपनी किस्मत की कहानी सुनती रही।

"पूरो! पहले ही दिन जब मैंने तूझे देखा, खुदा गवाह है, मुझे तुझसे इश्क हो गया। एक तो मेरी मोहब्बत का ज़ोर, दूसरे मेरी पीठ पर सारा शेख घराना। मैं तुझे ले आया हूं, पर मुझसे कसम ले ले, मुझसे तेरा दु:ख नहीं देखा जाता।" रशीद ने कहा।

पूरो ने दोनों हाथों में अपना सिर थाम लिया।

"तेरी बूआ को मेरे ताऊ ने उठा लिया! पर रशीद! इसमें मेरा क्या दोष? हाय! मैं कहीं की न रही!" पूरो का मुंह आंसुओं से भीग गया।

"यही तो मैं कहता था, पर मेरे चाचा मुझपर फिटकार करते थे।"

"तो रशीद! उनके उकसाने के कारण तूने मुझे मार डाला?" पूरो ने रोते-रोते कहा।

"पूरो! मैं सारी उम्र तेरे आगे जग की नेमतें ला-लाकर रखूंगा, रशीद ने भरे हुए गले से कहा, "मैं तेरे ताऊ की तरह नहीं करूंगा कि तीन रातों के बाद बेचारी औरत को धक्का दे दूं।"

"रशीद! एक बार मुझे मेरी मां से मिला दे।" पूरो को कहने के लिए यही मिला।

"ओ नेकबख्त! अब उस घर में तेरे लिए कोई जगह नहीं। उनकी बिरादरी का कौन हिन्दू फिर शाहों के घर का पानी पिएगा! तू मेरे घर में पूरे पन्द्रह दिन रह चुकी है।"

"पर मैंने तो सिर्फ तेरे घर के अन्न-पानी से मुंह लगाया है, मैं..." पूरो आगे कुछ न कह सकी, पर जो कुछ पूरो कहना चाहती थी, उसे रशीद समझ गया।

"इस बात को कौन मानेगा, पूरो! यह तो मेरी शराफत है कि पहले मैं तेरे साथ निकाह पढ़वाऊंगा..." रशीद ने नरम आंखों से पूरो की ओर देखा।

पूरो की आंखों के सामने उसका मंगेतर फिर गया। अभी पूरो के तेल चढ़ना था, पूरो ने 'माइएं पड़ना' था, पूरो के हल्दी का

उबटन मला जाना था, पूरो को सच्चे हाथीदांत का लाल चूड़ा चढ़ना था, पूरो को कौड़ियों वाले कलीरे छनकाने थे, पूरो को रेशमी जोड़े पहनने थे, पूरो के रूप चढ़ना था, पूरो को डोली में बैठना था, पूरो...पूरो...पूरो...

पूरो निर्दोष थी। वह कैसे समझ लेती कि उसकी मां का दिल पत्थर हो जाएगा, उसके पिता का दिल लोहे का बन जाएगा, वे अपनी बेटी को घर से निकाल देंगे, उनके घर की दीवारें उसे अन्दर रखने से इनकार कर देंगी!

"मैं जब लौटकर घर नहीं पहुंची तो उस समय मेरे माता-पिता का क्या हाल हुआ होगा! मेरी बहन...!" पूरो को वह समय याद आ गया जब होनी उसके सिर पर टूट पड़ी थी।

"वे रोते-क़लपते रहे हैं, पर उसी तरह, जैसे मेरा दादा, मेरा पिता, मेरे चाचा मेरी बूआ के चले जाने पर रोए थे। पुलिस भी बहुत खोज-खबर लगाकर हार गई है, पर उन्हें भी कोई अतापता नहीं लग सका है। और उन्हें पता लग भी कैसे सकता है! पुलिस ने पूरा पांच सौ रुपया खाया है।" रशीद अपनी हंसी न रोक सका। "तू तो जानती ही है कि इस समय हमारा पलड़ा भारी है। सारा गांव मुसलमानों का है। कोई हिन्दू का बच्चा आंख उठाकर हमारी ओर देख नहीं सकता। यही गनीमत है कि उनकी जान-माल सलामत हैं। उन्हें अपनी जान प्यारी है, वे कुछ बोल नहीं सकते। अगर वे हमारे घर की ओर उंगली भी उठाते, तो हमारे आदमी उन्हें नहर भी पार करने न देते।" रशीद ने कुछ हंसकर कहा। शायद उसके दिल में पुराने बदले की आग धधक उठी थी।

पूरो को रशीद का मुख देखकर बड़ी घृणा हुई। उसका जन्म नष्ट हो गया। यह लोक गया, परलोक गया। शायद उसके माता-पिता छत्तोआनी को अपनी पुत्री की बलि चढ़ाकर वापस सियाम लौट भी गए हों।

"क्या मेरे माता-पिता सियाम चले गए हैं?" पूरो ने तड़प कर पूछा।

"नहीं, अभी नहीं।" रशीद ने उत्तर दिया।

"मैं कहां रह रही हूं? अपने गांव से कितनी दूर?" पूरो ने उसी प्रकार पूछा।

"तू अपने गांव के पिछली ओर माघोकियां के कुएं के पार मेरे अपने बाग में है। पर शायद तू अपने गांव जाने का सपना देख रही है। अभी नहीं। ज़रा बात ठण्डी हो ले, छः महीने बीत जाएं, वहां भी ले चलूंगा।" रशीद मुस्कराने लगा।

पूरो चुप हो गई। रशीद ने चावल के पुलाव की एक तश्तरी भरकर पूरो के आगे रखी। रशीद जब बाहर जाता था, तब शायद किसी के हाथ अपने गांव से पकवान मंगवा लेता था। पूरो को कुछ पता न था।

उस दिन पूरो के मन में कुछ अधेड़बुन लगी रही। उसे डर था, कहीं उसका साहस उसे जवाब न दे जाए, इसलिए पूरा ने चावल के दो-चार कौर अपने मुंह में डाल लिए। पानी भी घूंट-घूंट करके एक कटोरा पी लिया।

उस रात पूरो ने सारा साहस इकट्ठा करके अपने मन को पक्का किया। रशीद के सिरहाने दरवाज़े की चाभी रखी हुई थी। पुरो ने चुपके से उसे उठा लिया, दरवाज़ा खोला। उसका दिल धक्-धक् कर रहा था कि रशीद अब जागा, अब जागा, पर दुर्भाग्य से या सौभाग्य से कहिए, रशीद की आंख न खुली।

बाहर रात के सननाटे को देखकर पूरो कांप उठी। एक बार उसका जी किया कि वह लौटकर रशीद के पास चली जाए। न जाने रात के अंधेरे में वह छत्तोआनी का रास्ता पा सकेगी या नहीं। कहीं रात के अंधेरे में वह रशीद से भी गए-बीते किसी आदमी के हाथ तो न पड़ जाएगी, न जाने उसकी क्या दशा होगी! पर पूरो को अपनी मां का मुंह याद आ गया, पूरो को अपने पिता का मुख याद आ गया, बहन-भाई याद आ गए। पूरो ने वैसे ही एक पगडंडी पर चलना आरम्भ कर दिया, शायद यही माघोकियां के कुएं का रास्ता हो। डरती-कांपती वह चलती रही।

रात का गहरा अंधेरा फट चला था। माघोकियां के कुएं का रास्ता ठीक निकला। पूरो ने झुटपुटे अंधेरे में ही छत्तोआनी गांव का पिछवाड़ा पहचान लिया।

अब पूरो न इधर में थी, न उधर में। उसने अपनी बची हुई शक्ति को अपने गांव में डाला। वह दौड़ने लगी।

पूरो ने छत्तोआनी गांव को पहचाना, अपने घर की ओर मुड़ती हुई गली को पहचाना, अंधेरे में अपने घर की दीवारों को पहचाना।

पूरो ने दरवाज़ा खटखटाया। जैसे ही किसी ने भीतर से दरवाज़ा खोला, पूरो ड्योढ़ी में फर्श पर गिर पड़ी। वह अपनी शक्ति का अंतिम अंश भी खर्च कर चुकी थी। अब वह दौड़-दौड़कर, हांफ-हांफकर दाई को छू चुकी थी। अब मानो पूरो की सम्पूर्ण शक्ति निःशेष हो चुकी थी।

पूरो की आंखों में अंधेरा छा रहा था। उसने देखा, उसकी मां, उसका पिता हाथ में दीया लेकर उसके पास खड़े हुए हैं। वह एक घायल पक्षी की भांति ड्योढ़ी के कच्चे फर्श पर सिसकने लगी। उसने देखा, मां की आंखों से पानी की धाराएं बह रही हैं। मां ने पूरो को उठाकर अपनी बांहों में ले लिया। पूरो ने मां की छाती से अपने सिर को ऐसे लगा लिया, मानो उसके टूटे हुए सम्बन्ध फिर से जुड़ जाएंगे। पूरो की मां की चीखें निकल गईं।

"लोग इकट्ठे हो जाएंगे!" पूरो के पिता ने अपनी स्त्री का कंधा हिलाकर कहा। पूरो की मां ने अपने पल्ले के कोने को इकट्ठा करके अपने मुंह में ठूंस लिया।

"बेटा, तेरी किस्मत! अब हमारे बस का कुछ नहीं!" पूरो को अपने पिता का स्वर सुनाई दिया। वह अपनी मां से चिपटी रही।

"अभी शेखों के यहां से लोग आ जाएंगे और हमारे बच्चे-बच्चे को पेर डालेंगे।"

"मुझे लेकर सियाम चले चलो।" पूरो ने मां की छाती से मुंह

जरा हटाकर बड़े आग्रह के साथ कहा।

"हम तुझे कहां रखेंगे? तुझे कौन ब्याहकर ले जाएगा? ते धर्म गया, तेरा जन्म गया। हम जो इस समय कुछ भी बोले तो यह हमारे लहू की एक बूंद भी नहीं बचेगी।"

"हाय, मुझे अपने हाथ से ही मार डालो!" पूरो ने तड़पक कहा।

"बेटा! जनमते ही मर गई होती! अब यहां से चली जा। शेर आते ही होंगे। तेरे पिता, तेरे भाई का कहीं पता भी नहीं मिलेगा। सबको मार डालेंगे।" मां ने न जाने कैसे अपने दिल पर पत्थ रखकर यह बात कही।

पूरो को ध्यान आया, रशीद ने कहा था, 'नेकबख्त, अब उस घर में तेरे लिए कोई जगह नहीं।' क्या रशीद ने सच ही कहा था

पूरो को एक बार मंगेतर रामचन्द का ध्यान आया। क्य सगाई, और क्या ब्याह? क्या पूरो उसकी कुछ न लगती थी? उसने पूरो की बात भी न पूछी?

फिर पूरो का जीने का मन न किया। उसने सोचा, और सब रास्ते तो बन्द हैं, शायद मौत का रास्ता खुला हो। वह उठक बाहर की ओर चल दी।

न मां ने रोका, न पिता ने। पूरो चलती गई। आते समय पूर जीवन से भेंट करने आ रही थी, उसके हृदय में लालसा थी जीने की, माता-पिता से मिलने की। बहुत डरती-कांपती आइ थी। लौटते समय वह मृत्यु से भेंट करने चली थी। अब उसके मन में कोई डर नहीं था, कोई भय नहीं था। मृत्यु से बढ़कर कोई उसका क्या कर सकता था!

पूरो निःशंक माधोकियां के कुएं की ओर जा रही थी। प्रभात का नवप्रकाश सब पगडण्डियों पर बिखरा हुआ था।

सामने से रशीद डग भरता चला आ रहा था। पूरो के पांव वहीं जम गए। मृत्यु ने भी पूरो पर अपना दरवाज़ा बन्द कर लिया था।

पूरो को लगा कि इन पन्द्रह दिनों ने उसके शरीर पर से सारा मांस उतार लिया है, अब वह निरा पिंजर है। उसकी न कोई आकृति है, न सूरत, न कोई मन, न मर्ज़ी। रशीद ने आकर पूरो की बांह पकड़ ली। वह उसके साथ चल दी।

तीसरे दिन एक मौलवी आया। दो-तीन आदमी और आए। उन्होंने रशीद के साथ पूरो का निकाह पढ़वा दिया। फिर अपने-आप ही रशीद ने पूरो को बताया कि उसके माता-पिता कुशलपूर्वक सियाम चले गए।

छत्तोआनी का नाम लेते हुए भी पूरो को चक्कर आने लगता। रशीद इस बात को समझता था। और फिर पूरो को छत्तोआनी ले जाना भी खतरे से खाली नहीं था। शायद रशीद सोचता था कि कहीं वहां के या आसपास के गांवों के हिन्दू भड़क न जाएं, यद्यपि अब पूरा महीना होने वाला था और किसी का साहस न पड़ा था कि एक शब्द भी बोल सका हो। और फिर दूसरे की आग में कौन कूदता है? यह तो पीढ़ियों के बैर थे, किसी ने अपने मन में दबा लिए, किसी ने निकाल लिए।

रशीद की मां या कोई बहन उस समय जीवित न थी। भाई थे, चाचा थे। रशीद ने पूरो से कहा कि वह उसे वहां से कोसों दूर अपने एक गांव सक्कड़आली ले जाएगा जहां दादा-पोतों के रिश्ते के एक भाई रहीम की ज़मीन थी। शायद उसकी कुछ जमीन को भी अपनी इधर की जमीन से बदल ले।

अब पूरो होनी के हर धक्के के लिए तैयार थी। जब सगे माता-पिता ने ही धक्का दे दिया, तो अब गांवों में ही क्या पड़ा था! यहां न सही, वहां सही।

रशीद स्वयं ही घर के बड़े की भांति दो-तीन ट्रंक लाया, फिर कुछ और सामान लाया, और फिर पूरो को साथ लेकर सक्कड़आली चल दिया। रास्ते में जैसे कोई आंखें खींचकर चलता हो, ठीक उसी तरह रशीद के साथ-साथ चकलर पूरो नये गांव में आ गई। नये गांव में पहुंचते ही उन्हें एक अलग मकान मिल गया।

शायद रशीद ने पहले ही रहीम से कह-सुनकर यह व्यवस्था कर ली थी। रहीम का घर उनके घर से काफी दूर था। फिर भी रहीम के घर की स्त्रियां उससे मिलने आईं। वह पहली बार थी, जब पूरो को रशीद के सम्बन्धियों के स्त्रियों से मिलने का अवसर पड़ा।

पूरो एक खोई हुई बछिया की भांति उनके पास बैठी रही। उन्होंने पूरो से बहुत पूछताछ न की। छोटी-मोटी घर की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में ही पूछती रहीं।

रशीद पूरो को पूरो ही कहकर बुलाता। निकाह के समय पूरो का नाम हमीदा रखा गया था, वह अभी तक उसकी ज़बान पर नहीं चढ़ा था।

एक दिन अचानक ही रशीद एक आदमी को घर ले आया। वह बांहों पर स्त्रियों-पुरुषों के नाम गोदता था। उस दिन फिर पूरो का हृदय टीस उठा, परन्तु जैसे ही रशीद ने कहा, उसने बांह आगे कर दी और उसकी बाईं बांह पर 'हमीदा' गहरे हरे रंग के अक्षरों में गोदा गया। रशीद भी उस दिन से उसे हमीदा पुकारने लगा। शायद यह सलाह रहीम के घरवालों ने दी थी।

पूरो अब हमीदा बन गई। किन्तु अभी तक जब रात को वह सो जाती थी, उसके सपनों में उसकी सहेलियां मिलती थीं, सपनों में वह अपने माता-पिता के घर खेलती-कूदती फिरती थी, सब उसे पूरो ही पुकारते थे। दिन के प्रकाश में पूरो हमीदा बन जाती थी, रात के अंधकार में वह पूरो रहती। किन्तु पूरो सोचती थी वह वास्तव में हमीदा थी न पूरो, वह केवल एक पिंजर थी, केवल पिंजर—जिसका कोई रूप न था, कोई नाम न था।

पांच-छः महीने बीते होंगे कि पूरो के पिंजर में एक नन्हीं-सी जान फड़कने लगी।

बैसाखी का मेला

मटमैला दिन था। बीते हुए दिन एक-एक करके पूरो की आंखों के आगे से गुज़र गए। बोरी के एक टुकड़े को अपने पैरों के नीचे लेकर पूरो पत्थर का बुत बनी हुई उन्हें देखती रही।

बाहर के दरवाज़े खोलकर रशीद भीतर के आंगन में आकर खड़ा हो गया। पूरो को जैसे खड़का सुनाई ही नहीं दिया, पूरो को जैसे कोई आता दिखाई दी नहीं दिया। वह बैठी ही बैठी रही। रशीद को शायद सचमुच ही पूरो से प्रेम था, वह चुपके से आकर पूरो के पास बैठ गया।

''क्या सोच रही है?'' रशीद ने अपनी एक बांह पूरो के शरीर से सटा दी। पूरो आज अत्यन्त उदास थी; वह न हिल सकी, न बोल सकी।

रशीद उसे दुलार करता रहा। फिर बहुत देर बाद पूरो ने कहा, ''आज मुझे ऐसा लगता है, जैसे कोई मेरे भीतर मेरी अंतड़ियों को नोच रहा हो।''

रशीद हंसता रहा और पूरो के मन को ढाढ़स बंधाता रहा। फिर रशीद ने चूल्हे में बुझी हुई आग को सुलगाया और पूरो को पास बिठाकर आप एक पतीले में बटेर भूनने लगा।

''न तू कहीं आती-जाती है, न किसी से मिलती-जुलती है। ऐसे तो अच्छे-भले आदमी का जी घबरा उठता है।'' रशीद ने कुछ देर ठहरा कर कहा।

''कहां जाऊं? मेरे लिए और जगह ही कौन सी है?'' पूरो ने बुझे हुए मन से कहा।

''अब तू घर की मालकिन है; और चार दिन में तेरे आंगन में

एक जीव खेलने लगेगा। मेरे लिए न सही, उसके लिए ही सही तूझे अपने मन को छोटा नहीं करना चाहिए। उस बिचारे ने तेरा क्या बिगाड़ा है?" रशीद को अपने होने वाले बच्चे का ध्यान आ गया, उसने उसी की दुहाई देकर पूरो से यह आग्रह किया।

पूरो को फिर मटर की फली में से निकले कीड़े का ध्यान आ गया, जिसे देखकर जी मिचला उठे, जिसके पास वाले मटर के दानों को फेंक दिया जाए।

"ला, बटेरों के मसाले में थोड़े-से मटर डालने हैं।" रशीद ने पूरो के आगे बिखरे हुए मटर के दानों की ओर देखकर कहा।

"मटर तो सब पकी हुई हैं। अब मटरों की कौन-सी बहार है, अब तो बैसाख चढ़ने वाला है।" पूरो जानती थी, आज वह मटर नहीं खा सकेगी।

"हां, सच! कल तो बैसाखी का बड़ा भारी मेला लगेगा।" रशीद ने सहज स्वभाव से कहा।

'बैसाखी...बैसाखी...' पूरो के कानों में गूंजने लगा। वह परात में दो-तीन मुट्ठी आटा डालकर गूंधने लगी जिससे उसका मन बंट जाए।

"आज तो मेरा जी कर रहा है कि गुड़ डालकर सेवइंयां बनाई जाएं।' रशीद ने कहा। पूरो चुपके से भीतर से सेवइंयां और गुड़ ले आई।

उसी समय पूरो को एक बहुत पुरानी याद आ गई। एक दिन पूरो की मां बैठकर सूजी की सेवइंयां तोड़ रही थी कि पूरो ने कहा, मां, री मां, मेरा तो मशीन की तोड़ी हुई सेवइंयां खाने को जी करता है। इसपर मां ने तुरन्त कहा था, हट, वह तो मुसलमान खाते हैं।

यह बात याद आते ही पहले तो पूरो की आंखों में आंसू भर आए, फिर वह हंस पड़ी।

रशीद ने उसकी हंसी का कारण पूछा, पूरो ने वह बात सुना दी। सुनाते-सुनाते वह फिर रो पडी। रशीद लज्जित-सा बैठा हंसता रहा।

दूसरे दिन सवेरे जब पूरो सोकर उठी, गांव में बैसाखी के ढोल बज रहे थे। पहले तो पूरो घर के काम-काज में लगी रही, फिर वह छत पर चढ़कर दूर गांव में लगा हुआ बैसाखी का मेला देखने लगी।

दूर खड़ी पूरो को लोगों का एक विशाल समूह दीख पड़ रहा था। लम्बे-तड़ंगे जाट कमर में कोरे तहमद बांधे हुए, हाथों में तेल से चमकाई हुई लाठियां लिए, और हृदय में उत्साह और उल्लास भरे इधर से उधर आ-जा रहे थे। बहुत-से घोड़ियों पर चढ़े हुए थे, पीछे अपनी स्त्रियों को बिठाए आगे एक-दो बाल-बच्चों को भी लिए और बहुत-से थे जो बच्चों की उंगली पकड़े स्त्रियों को अपने पीछे लिए घूम रहे थे। कई बलिष्ठ नवयुवक अपने यौवन और कल के मद में चूर छाती निकाले चल रहे थे, कुछ गाते जाते थे, कुछ बातें करते जाते थे। दूर परे मैदान में कुश्तियां हो रही होंगी, जलेबियों के थाल लगे हुए होंगे, गरम पकौड़ियों की महक दूर तक हवा में फैली हुई होगी। गुड़ के शक्करपारे, मैदे की मठ्ठियां और मिठाइयों के ढेर के ढेर लोहे के चौड़े थालों में सजे हुए होंगे।

पूरो के मस्तिष्क में एक विचार उत्पन्न हुआ, मानो किसी ने उसके सिर में हथोड़ा दे मारा। उसकी मां ने तीन लड़कियों के बाद इस बार पुत्र को जन्म दिया था और वह...यह उसकी पहली बैसाखी थी।

पूरो खड़ी थी, छत पर बैठ गई। कौन जाने इस समय उसकी मां ने उसके छोटे भाई को पानी चखाया होगा। पास बहती हुई किसी नदी का पानी लेकर, गुलाब के फूल को उस पानी में भिगोकर, उसके भाई के नन्हें गुलाबी होंठों से लगाया होगा। फिर उसकी मां को बधाइयां मिली होंगी। और कौन जाने...कौ जाने इस समय उसकी मां को अपनी पेट की जायी पूरो की याद आ गई होगी...

पूरो की आंखों में आंसू भी आ-आकर थक चुके थे। वह दोनों हाथों में सिर को पकड़े बैठी रही।

युवा जाट लड़कों की एक टोली कानों में फूल अड़ाए हंसती-गाती परे से गुज़र रही थी। उनमें से कोई बोली गा रहा था:

खूह ते बैठी दातन करदी
चिट्टेयां दंदां दी मारी
नीं आपे तैनूं लै जाणगे
जिन्हां नूं लगें पियारी
नी आपे तैनूं लै जाणगे...

"काश! कोई प्यारी लगने वालियों के हाल तो देखे।" पूरो के मुंह से धीरे से निकल गया।

फिर पूरो के मन में एक बिचार आया, वह रशीद को ही प्यारी लगी, रशीद उसे ले आया। वह अपने मंगेतर रामचन्द को क्यों प्यारी न लगी? उसने तो उसकी बात भी नहीं पूछी। वह तो रामचन्द को प्यारी लगना चाहती थी। रशीद को न तो उसने स्वयं ढूंढ़ा था, न ही उसके माता-पिता ने उसे चुना था।

जाट हंसते जा रहे थे, कूदते जा रहे थे, भंगड़ा नाचते जा रहे थे, बोलियां गाते जा रहे थे:

तेरे लौंग दा वज्जा लिशकारा
हालियां नूं हल भुल्ल गए...
तेरा भिज्जया परी दा लहंगा
पच्छौं दियां पैण कणियां...
सानूं कंड ना देईं मुटियारे
नी राहे राहे जाण वालीए...

पूरो सोचती रही, सब गीत सुन्दर लड़कियों के ही गुण गाते हैं, सारे भजन सच्चे प्रेम का है, वर्णन करते हैं। क्या कभी ऐसे गीत भी बनेंगे जिनमें मुझ जैसी लड़कियों के रुदन की कथा लिखी जाएगी? क्या कभी ऐसे भजन भी होंगे जिनका कोई भगवान ही न होगा?

बढ़ती जवानी वाली कुछ नवयुवतियां अपने यौवन की उच्छृंखलता में अपनी एक अलग टोली बनाकर मेले में चली जा रही

थीं। एक दूर पर जा रहे जाट लड़के अपनी टोलियों में से मुड़-मुड़कर उनकी ओर ताक-झांक रहे थे, और हंस रहे थे। शायद उनसे हंसी-मज़ाक कर रहे हों। पूरो सोचने लगी, यदि सब जवान लड़कियों को यह लड़के अपनी-अपनी घोड़ियों पर उठाकर भाग जाएं, फिर क्या हो? यदि ये इन लड़कियों को उठाकर ले जाएं...

पूरो का बच्चा

भरी गर्मी आ गई थी। छिपटिया डालकर जलाए गएं तन्दूर की भांति धरती जल रही थी।

पूरो कभी बैठती, कभी उठती, कभी लेट रहती थी। आज उसका जी ठीक नहीं था। पल-पल पर वह पानी पी रही थी। उसकी पड़ोसिन ने उससे कहा था, ''जैसे भी हो आज नहा ले और अपना सिर भी धो ले, फिर क्या पता रात को या सवेरे ही तेरे घर कुछ हो जाए, फिर तू कितने ही दिन उठने योग्य न रहेगी।''

रशीद ने देखा, पूरो का रंग शरीर में उठती पीड़ा के साथ-साथ पूनी जैसा सफेद होता जा रहा था। रशीद को वह समय याद आ गया, जब वह छत्तोआनी की कच्ची सड़क से पूरो को अपने आगे घोड़ी पर बिठाकर भगा लाया था। उस समय भी पूरो का रंग सफेद फटकरी जैसा हो गया था। उस समय पूरो की आत्मा में से चीसे उठ रही थीं, आज उसके रक्त-मांस में से।

रशीद ने रहीम के घर अपने खेतों पर काम करने वाला एक नौकर भेजा। पूरो को अकेली छोड़कर जाने का उसे साहस न होता था। जब रहीम की मां पहुंची, उस समय बढ़ती हुई पीड़ा पूरो के मुख पर बल खा रही थी। आते समय रहीम की मां अपनी गली वाली उस रेशमां दाई को भी लेती आई थी जिसने रहीम की दोनों स्त्रियों से दो-दो लड़के-लड़कियां पैदा होने के समय मदद दी थी।

दाई ने आते ही एक पुरानी दरी फर्श पर डालकर उसपर पूरो

को लिटा दिया। पूरो चारपाई की नरमाई को छोड़कर कड़ी जमीन पर लेटी कराहने लगी।

रशीद बाहर देहली के पास खड़ा था। बन्द किए हुए भीतरी किवाड़ के अन्दर से पूरो की दांतों में भिंची हुई लम्बी-लम्बी हुंकार रशीद को सुनाई देती रही। उसका मन कर रहा था, पूरो के शरीर में से बहुत नहीं तो कम से कम आधी पीड़ा निकालकर अपने में डाल ले। पूरो अकेली ही पड़ी कराह रही थी।

दाई नई गोट वाले पंखे से पूरो के मुख पर धीरे-धीरे हवा करती रही। कितनी ही बार रहीम की मां ने घूंट-घूंट करके पूरो के मुंह में पानी डाला।

बाहर खड़े हुए रशीद ने तीन ज़ोर की चीखों के बाद बच्चे के टिटियाने की आवाज़ सुनी। उसके बाद पूरो के मुख से कोई आवाज़ न निकली। उसका कष्ट समाप्त हो चुका था। रशीद ने चैन की सांस ली। उसका जी कर रहा था कि वह भीतर चला जाए। दाई तो शायद बच्चे की देखभाल में लगी होगी, वह जाकर पूरो को संभाले। पूरो अभी तक उसके हाथों रोती ही रही थी, पूरो अभी तक उसके कारण कराहती ही रही थी। पर भीतर उसकी चाची बैठी हुई थी, भीतर दाई बैठी हुई थी। जब तक वह उसे भीतर न बुलावें, भीतर जाना उसे बड़ी अभद्रता प्रीत होती थी।

मिनट या मिनट बीतते गए, पूरो की फिर आवाज़ नहीं आई। रशीद के दिल में घबराहट उत्पन्न हुई—पूरो जीवित तो है? उसकी आवाज़ इतनी-सी भी क्यों नहीं आती?

इसी प्रकार आधा घंटा बीत गया। दाई ने बाहर आकर रशीद से कहा, "बेटा बधाई हो, लड़का हुआ है।"

"उसका क्या हाल है?" रशीद ने पूछा।

"ठीक-ठाक है, बेटा! ऐसे ही कुनबे बढ़ते हैं, लड़के छत से तो गिर नहीं पड़ते।" दाई ने हौसले के साथ मुस्कराकर कहा, उस हौसले के साथ जिससे उसने सैकड़ों स्त्रियों की पीड़ा को अपने हाथों पर झेला था।

जब रशीद अन्दर गया तो पूरो लेटी हुई थी। उसकी आंखें निढाल थीं। उसके पास ही एक सफेद कपड़े में लपेटा हुआ उसका और रशीद का पुत्र पड़ा अंगूठा चूस रहा था।

रशीद का हृदय गर्व से भर उठा। उसने पूरो पर विजय प्राप्त कर ली थी, इस जुए में उसने सारी की सारी पूरो को जीत लिया था। पूरो अब केवल उसकी भगाई हुई रखैल ही नहीं थी, वह अब केवल उसकी घर में डाली हुई स्त्री ही नहीं थी, अब वह उसकी पुत्र की मां भी थी।

रहीम की मां के कहे अनुसार रशीद ने एक रुपया और गुड़ की भेली अपने पुत्र के ऊपर वारी। पुत्र की उनींदी आंखें खुलीं, उसने रशीद को देखा।

'अब तू मुझसे क्या कहता है? मैंने तुझे अपना आपा दिया, मैंने तुझे एक पुत्र दिया है, अब मेरे पास बाकी क्या रह गया है?' मानो पूरो ने मूक जिह्वा से रशीद से कहा। फिर पूरो ने आंखें मींच लीं।

गर्म गुड़ और पिसे हुए बादाम कुछ चम्मच पीकर जब पूरो के शरीर में कुछ जान आई तो उसने देखा कि उसके बच्चे का नरम-नरम मुंह उसकी बांह से लग रहा है। पूरो के शरीर में एक कंपकंपी-सी आ गई। उसे लगा कि एक नरम सफेद कीड़ा उसके शरीर पर चढ़ रहा है। पूरो को घृणा-सी हुई। उसका मन किया, अपनी बांहों से लगे हुए कीड़े को वह तोड़ डाले, अपने पास से उसे दूर फेंक दे, ऐसे जैसे कोई चुभे हुए कांटे को नाखूनों में फंसाकर निकाल देता है, जैसे कोई धंसे हुए गोखरू को उखाड़कर फेंक देता है, जैसे कोई चिमटी हुई किलनी को नोचकर अलग कर देता है, जैसे कोई चिमटी हुई जोंक को तोड़ फेंकता है।

रहीम की मां को इनके घर पूरे तेरह दिन रहना था। अभी पूरो के लड़का हुए केवल चार दिन हुए थे।

पांचवें दिन पूरो के दूध उतरा। अब तक दाई रुई की बत्तियां बनाकर लड़के के मुंह में दूध देती रही थी। आज उसने लड़के को

पूरो के स्तन से लगा दिया।

लड़का पूरो की गोदी में पड़ा रहा। उसके शरीर से चिप
रहा। पूरो ने अपनी अंतड़ियों में एक खिंचन-सी अनुभव की
उसका मन किया कि वह लड़के को गले लगाकर फूट-फूटक
रोए। लड़का उसके अपने रक्त का बना हुआ खिलौना था, उस
ही मांस का बना हुआ पुतला था। इस भरे-पूरे संसार में यह ए
लड़का ही उसका अपना था। वह अब कभी भी अपनी मां का मु
न देख सकेगी, वह अब कभी भी अपने पिता का मुख न देख सकेग
वह अपने भाई-बहनों को भी कभी न देख सकेगी...वह...व
केवल अपने लड़के का मुंह देखा करेगी, जिसके रक्त में उस
अपने माता-पिता का रक्त भी मिला हुआ था। उसके माता-पि
उसे तो तोड़कर अलग फेंक गए, किन्तु अपने रक्त को कैसे अल
कर सकेंगे जो कि पूरो के अंग-अंग में रचा हुआ था, जो कि पूरो
घर उत्पन्न हुए लड़के के रक्त में मिला हुआ था!

बच्चा पूरो का दूध पीता रहा। फिर पूरो को लगा, य
लड़का ज़बरदस्ती ही उसकी नसों में से दूध खींच रहा है
ज़बरदस्ती...ज़बरदस्ती...इसके पिता ने भी तो उसके सा
ज़बरदस्ती की थी। लड़का भी तो अपने पिता का ही पुत्र था, अप
पिता का रक्त था, अपने पिता का मांस था, अपने पिता का रू
था। ज़बरदस्ती यह उसके शरीर में धरा गया था, ज़बरदस्ती ह
उसके पेट में पल गया था, और अब ज़बरदस्ती ही उसकी नसों
दूध खींच रहा था...

पूरो ने अपने माथे को छुआ। आग में पड़ी हुई ईंट की भांि
उसका माथा गरम था। शायद उसे ज्वर चढ़ा हुआ था...पूरो
मस्तिष्क में एक विचार घूमने लगा; यह लड़का...उस लड़के क
पिता...सब पुरुष जाति...पुरुष...पुरुष जो स्त्री के शरीर को कु
की हड्डी की भांति चूसते हैं, कुत्ते की हड्डी की भांति चबाते हैं

लड़का पूरो का दूध पीता रहा। पूरो का मन रहंट के डोंगों क
भांति भरता और खाली होता रहा।

अनाथ

पूरो के गोलमटोल लड़के को सब जावेद कहकर पुकारते थे। पूरो उसे सुतली की पलंगिया पर डालकर देखती रहती थी। टांगें चला-चलाकर वह अपने ऊपर की चादर उतार देता और उसे पैरों में रौंद देता। पूरो ने उसके पांव में चांदी की पतली-सी पाज़ेब डाल रखी थी। जब वह टांगें मारता, पाज़ेब की हल्की-सी छन-छन पलंगिया पर सुनाई देती। लातें चलाते समय ज़ोर लगाने के कारण उसका मुंह लाल हो जाता और उसे हुचकियां आने लगतीं।

फिर पूरो उसके हाथों की ओर देखती। उसकी हथेली वास्तव में बहुत ही गोरी थी, और हथेली के पीछे की ओर मांस इस तरह उभरा हुआ था कि पूरो को उसके हाथ बिलकुल मोम के उस बबुए जैसे लगते थे, जिसे छुटपन में उसने सियाम से आते हुए कलकत्ते के एक बाज़ार में खरीदा था। पूरो ने उस बबुए को क्रोशिए से बुनकर एक कुरता पहनाया था, छोटे-मोतियों को एक धागे में पिरोकर उस बबुए को माला पहनाई थी। जावेद के हाथ बिलकुल उस बबुए के हाथों की भांति थल-थल करते थे। मोम का वह बबुआ शायद अभी तक नहीं टूटा होगा। पूरो सोचने लगती, कभी-कभी कांच और मिट्टी की वस्तुओं का जीवन भी कितना लम्बा हो जाता है, शायद आज भी उस बबुए से पूरो की कोई बहन खेल रही होगी।

मुंह अंधेरे ही पूरो खेतों में जाती। रशीद लड़के के पास बैठता। एक दिन अभी अंधेरा ही था, पूरो खेतों से लौट रही थी। गांव के बाहर मुसलमानों के कुएं पर उसने हाथ-पैर धोए और जब वह अपने घर को लौट रही थी, उसे अपनी गली की एक लड़की

कम्मो दिखाई दी।

शरद् ऋतु की हल्की-हल्की ठण्ड थी। कम्मो पानी व बटलोई को पत्थर के एक छोटे-से धड़े पर रखकर खड़ी हो ग थी। पूरो जब उसके पास से गुज़री, कम्मो ने कांपते हुए हाथ पानी की उस बटलोई को उठा लिया। शायद उसके कन्धे बटलो का भार सहार न सके, बटलोई कम्मो के कन्धे से गिरने लगी बटलोई के नीचे टिकी हुई कम्मो की हथेली भार के कारण बीच दोहरी होती हुई प्रतीत होती थी। दायें हाथ से बटलोई का सहा देते हुए कम्मो के मुंह से निकला—"ओ, मां!"

पूरो के पांव रुक गए। पूरो कम्मो के पास हो गई। उसव मन किया, दस-बारह बरस की इस लड़की कम्मो के कन्धे बटलोई उतार ले। कम्मो उसके साथ-साथ चलती जाए, कम्म जो पांव से नंगी थी, जो सदा खद्दर के सुथने के पायंचे ऊपर को मो रखती थी, जिसकी धारियों वाली कमीज़ के मोढ़ों पर लगा हुअ पैवन्द कभी उधड़ जाता था, कभी फिर लग जाता था, जिसव चुनरी के पल्ले सदा तार-तार होकर लटके रहते थे, जिसके बा सदा बान जैसे खुश्क और बिखरे रहते थे, और जिसे पूरो ने सव दूर से ही देखा था। आज वह उसके पास जाकर उसके उन कन्ध पर से बटलोई उतार ले जिन कन्धों की हड्डियां पीतल व बटलोई से टक्कर खा रही थीं।

"बड़ी देर हो गई है?" बरतन के भार के नीचे दबी कम्मो मानो पूरो से आज देर न होने का एक सहारा मांगा।

"अभी तो दिन भी नहीं निकला।" पूरो ने स्थिर स्वर कहा।

न जाने लड़की में कुछ साहस आ गया, उसने अपने कन्ध का भार फिर धरती पर रख दिया। बटलोई के मुंह में से कोई एव चुल्लू-भर पानी छलककर कम्मो के कन्धों पर गिर पड़ा। घिस हुई धारियों वाली कमीज़ को पार करके पानी की ठण्ड कम्मो व शरीर में फैल गई। जाड़ों की ठिठुरन कम्मो के बदन में दौड़ गई

पूरो रुक गई। कम्मो पूरो की ओर देखकर हंस पड़ी। एक घड़ी पहले वह देर हो जाने के डर से और बरतन के बोझ से सहमी हुई थी। पूरो ने कम्मो के मुख पर सदा वही भय का भाव देखा था। उस समय उसके चौड़े होंठों पर फैली हुई हंसी पूरो को ऐसी लगती, जैसे कि उस लड़की को हंसना आता ही न हो, वह यों ही अपने होंठ मरोड़ रही हो, मानो किसी को मुंह चिढ़ा रही हो।

''कम्मो! तू रोज़ इसी वक्त आती है?'' कम्मो को जो आवाज़ें पड़ती थीं, उनसे पूरो को कम्मो का नाम मालूम हो गया था।

''लगता है, आज कुछ देर हो गई हे, मुझे मार पड़ेगी।'' कम्मो ने फिर बटलोई पर हाथ धर लिया, मानो समय का ज़िक्र ही उसके लिए डरावना हो गया हो। उसके मुख पर से उसकी हंसी कच्चे रंग की भांति उतर गई और फिर वही पुराना भय का भाव उसके मुख पर आ गया।

''कम्मो! वह तेरी कौन लगती है?''

''चाची!'' कम्मो ने कहा और उसकी बांह बटलोई के भार के नीचे मुड़ गई, कौन जाने उस बोझ के कारण या चाची के नाम से!

''तू कहे तो मैं तेरी बटलोई ले चलूं।'' पूरो ने कहा, पर अपना हाथ आगे न बढ़ाया। पूरो को इस बात का पूरी तरह ध्यान था कि लोग जानते थे कि उसका नाम हमीदा है—हमीदा—रशीद की पत्नी,...और कम्मो एक हिन्दू लड़की थी।

''बटलोई भ्रष्ट हो जाएगी।'' कम्मो ने निःशंक कहा।

''पानी तो भ्रष्ट नहीं होगा। मैं पानी को हाथ नहीं लगाऊंगी, तू जाकर बाहर से बटलोई मांज लीजो।'' कहते-कहते पूरो हंस पड़ी, कम्मो भी हंस पड़ी, पर वह बटलोई उठाए रही।

दोनों अभी थोड़ी ही दूर गई होंगी कि कम्मो का पैर मुड़ गया। गिरती हुई बटलोई को पूरो ने रोक लिया, पर कम्मो कंकड़-पत्थरों पर गिर पड़ी। कम्मो के पैर में मोच आ गई।

पूरो ने बटलोई धरकर कम्मो का पैर थामा, हथेली से कम्मो

के पैर को टखने के पास मला। देखते-देखते कम्मो उठने योग्य हो गई। पूरो बटलोई उठाकर साथ-साथ चलने लगी।

"ओ, मां!" कहकर कम्मो रोने लगी। पूरो को लगा, जैसे कम्मो अपने तमाम दुखों के लिए अपनी परलोकवासी मां को उलाहना दे रही है।

'पैदा करके हमारे लिए छोड़ गए', पूरो ने कई बार कम्मो की चाची को कहते सुना था। कम्मो के माता-पिता कोई न था। कम्मो का पिता तो शायद जीवित था, पर कहते थे, उसने शहर में इसी कारण कम्मो का पिता भी उससे कोई वास्ता न रखता था। पूरो सोच रही थी, जब माएं मर जाती हैं तब बाप भी पराये हो जाते हैं...सोचते-सोचते उसका ध्यान अपने जीवन की ओर चला गया। मांएं जीवित हों फिर भी पिता पराये हो जाते हैं, मांएं भी परायी हो जाती हैं...

गांव अब स्पष्ट दीख पड़ने लगा था। प्रकाश भी बढ़ गया था और उनकी गली का मोड़ भी अब आ गया था। फिर दोनों को यह डर था कि कोई पूरो को बटलोई उठाए न देख ले। कम्मो ने जब बटलोई संभाली, उसके पांव कांप रहे थे। पूरो ने जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाए और कम्मो से अलग हो अपनी गली में मुड़ गई।

उसी दिन दोपहर के समय पूरो का लड़का कुछ ज़िद करके रो रहा था और पूरो उसे बहलाने में लगी हुई थी, जब दरवाज़ा खोलकर कम्मो उसके घर में आ गई।

पूरो ने आगे बढ़कर कम्मो को अपने से चिपटा लिया। पूरो को लगा, उसके पुत्र की अपेक्षा कम्मो को बहलाए जाने की अधिक आवश्यकता है, कम्मो जिसके आंसू पोंछने वाला कोई न था।

कम्मो के आंसू पूरो की बांह पर गिर रहे थे। पूरो के जी में वही विचार रह-रहकर आ रहा था कि जैसे वह जावेद की मां है, वैसे ही कम्मो की मां भी बन जाए, कम्मो ऐंठकर रोने लगे, वह उसे उठा-उठाकर बिठाए, उसे गोद में ले-लेकर फिरे, उसे चूमते न थके...। वह जावेद की मां है, वह कम्मो की मां भी बन जाए, वह

सब अनाथों की मां बन जाए...। वह एक अच्छी पुत्री नहीं बन सकी थी, वह एक अच्छी मां बन जाए...

कम्मो हिन्दू थी और पूरो...पूरो एक मुसलमानी थी, यद्यपि अभी तक अपने-आपको वह पूरो ही समझती थी। कम्मो पूरो के घर का कुछ खा नहीं सकती थी, पर पूरो का जी करता था कि वह कम्मो को अपने हाथ से कौर खिलावे, उसे अपने हाथ से दूध का कटोरा पिलावे...

पूरो ने फिर कम्मो का पैर मला...हथेलियों से गरम-गरम घी रगड़ा...रुई से सेंक किया।

कम्मो घर जाने की जल्दी करने लगी। उसकी चाची की लम्बी झाड़ उसकी आंखों में सलाखों की भांति फिर रही थी। कम्मो दुलाई निरांदने वाली सुई लाने के बहाने चली आई थी।

पूरो ने कम्मो को बादाम वाला गुड़ खिलाया, और फिर दुलाई निरांदने वाली सुई भीतर से निकालकर दी।

जाड़ा दिन-दिन बढ़ रहा था। लोगों ने मोटे कपड़े पहन लिए थे। लोगों ने रुई भरवाकर काली छींट की फतूहियां सिलवाई थीं। लोगों ने मोटे खेसों में अपने कंधों को लपेट लिया था।

कम्मो अपनी आयु के वर्ष खाए जा रही थी। न उसके शरीर पर यौवन चढ़ता था, न ही उसके शरीर पर कभी नये वस्त्र दिखाई दिए थे। उसके नंगे पैर अब ठंड से ठिठुरने लगे थे।

पूरो ने कम्मो के लिए एक नई जूती बनवाई, पर कम्मो के लिए अपने पैरों में उस जूती को पहनना आसान काम नहीं था।

बहुत सोच-विचार के बाद कम्मो को वह जूती पहना दी गई, और कम्मो ने अपनी चाची से कह दिया कि सामने ईख के खेत में पड़ी मिली है। चाची ने यह बात मानी तो नहीं—भला गांव में ऐसी कौन होगी जो अपनी नई जूती ऐसे फेंक आई—पर वह चुप कर रही। कम्मो जूती पहनती रही।

किन्तु हर रोज़ तो नई चीज़ें पड़ी नहीं मिल सकतीं। पूरो कम्मो की ठिठुरती हुई हड्डियों को देखकर रह जाती।

केवल रात्रि के अन्तिम प्रहर का अन्धकार यह बात जानत था कि पूरो कम्मो की एक-दो बटलोइयां उठाकर उसे सांस ले ले देती थी।

कम्मो दिन में एक-आध फेरा पूरो के घर का लगा लेत थी—कभी बेलन में रुई साफ़ कर लेती, कभी चक्की में चने द लेती, कभी हावनदस्ते में मसाला कूट लेती। पूरो उसका हा बंटाती। चाची का काफी काम हो जाता। नन्हा बच्चा जावे कम्मो से हिल गया था। कभी कम्मो न आती तो पूरो उसे छो लड़के का उलाहना देती। जहां तक कम्मो से बन पड़ता, वह कभ नागा न करती।

अब पूरो और कम्मो मां-बेटियों की भांति एक-दूसरे से ल लेती थीं, दो सहेलियों की भांति एक-दूसरे से चिपट-चिपटकर बै जाती थीं।

कई बार पूरो का मन करता था कि वह कम्मो के लिए कु बनाए। कम्मो के सूखे हुए शरीर पर अब एक हल्का-सा उभा आने लगा था—कम्मो के पिचके हुए गालों पर गोलाई आ गई थी। पूरो के घर आकर कम्मो अपने बाल संवारती, पूरो चिकनाई क हाथ लगाकर कम्मो की मेढ़ियां करती।

एक दिन सवेरे मुंह अंधेरे कम्मो पूरो को पकड़कर बेतरह रोने लगी। पूरो ने ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखा, कम्मो गन्ने की भांति पेरी हुई जान पड़ती थी।

पूरो ने उसे अपने कलेजे से लगाया, उसका माथा चूमा—किन्तु कम्मो का रोना किसी प्रकार थमने में न आता था। आंसुओं से उसकी चुनरी भीग गई थी, आंसुओं से उसके हाथ भीग गए थे।

"मेरी चाची कहती है, जो तू अब उसके घर गई तो मैं तेरा खून पी डालूंगी।" कम्मो ने कहा और पूरो की छाती से लगकर सिसक-सिसककर रोने लगी। वह जी भरकर रोई, मानो पूरो उसका एक सहारा हो और उससे अलग करने के लिए कम्मो को

कोई हाथ पकड़कर खींच रहा हो।

"पर क्यों? मैंने क्या किया है?" पूरो ने ठहरकर पूछा।

"चाची कहती है, सुना है, वह घर से भागकर आई है, तू भी किसी दिन उसकी तरह भाग जाएगी।" कम्मो ने रोना बन्द करके कहा। प्रभात का प्रकाश उजला होने लगा था। पूरो टूटी हुई पूनी की भांति हो गई थी।

कटु सत्य

पूरो के हृदय पर एक के बाद एक चोटें पड़ती रही थीं। उसका मन और मस्तिष्क इतने अल्प समय में ही कम से कम दस बरस बड़े हो गए थे। पूरो की आयु बीस वर्ष से अधिक नहीं थी, किन्तु आयु उसे जो कुछ नहीं सिखा सकती थी, वह उसे जीवन के कुठाराघातों ने सिखा दिया था। एक बुद्धिमान विचारक की भांति पूरो गंभीर हो गई थी। पूरो का मन बड़ी विलक्षण बातें सोचता था, बहुत कुछ सोचता था। किन्तु पूरो को अपने विचारों को व्यक्त करना न आता था। पानी के टकराने से जैसे झाग उठते हैं और फिर पानी में समा जाते हैं, उसी प्रकार पूरो के हृदय में उमंगें उठतीं और विलीन हो जाती थीं।

कभी-कभार पूरो रहीम के घर उसके घर की स्त्रियों के पास चली जाती थी। उसके पड़ोस की एक लड़की के पीले मुख से वह बहुत आकर्षित हुई थी। कई बार पूरो का मन करता कि उसे बुला ले। दुखी को दुखी ही पहचानता है। उस लड़की के म्लान मुख पर बड़ी-बड़ी थकी हुई-सी आंखें थीं जो पूरो की ओर कुछ ऐसे झुक पड़ती थीं, मानो उन्हें भी पूरो की आवश्यकता हो। होते-होते पूरो को पता लगा कि पिछले से पिछले साल इस लड़की का विवाह हुआ था। कोई कहता था कि उसपर भूत-प्रेत था; कोई कहता था, उसे कोई भीतरी रोग था। न जाने उसे क्या हो गया था, उसका शरीर बहुत दुर्बल हो गया था, उसका मुख पीला पड़ गया था।

पूरो ने इसी तरह आते-जाते उस लड़की से परिचय कर लिया, और उस परिचय को उसकी मां के ज़रिये से अपने खेस बुनवाकर बढ़ा लिया। उस लड़की को सब तारो पुकारते थे।

कुछ दिनों बाद पूरो ने सुना, तारो को कई बार दौरे भी पड़ जाते हैं। उन दिनों तारो अपने मायके आई हुई थी। अब उसे अपनी ससुराल जाना था। पूरो ने सुना, हर बार अपनी ससुराल जाते समय तारो को इसी प्रकार होता था, और जितनी बार वह अपनी ससुराल से लौटकर आती थी, उसके शरीर का मांस पहले से भी कम होता था, हर बार उसके शरीर की हड्डियां पहले से भी अधिक निकली हुई होती थीं।

देखने वाले अपने मन में समझते थे कि बस, दो-तीन फेरों की बात और है, फिर और सूखने के लिए उसके शरीर पर मांस रह ही नहीं जाएगा, फिर और दुखने के लिए उसकी हड्डियों में जान ही न रह जाएगी। किन्तु मुंह से कोई कुछ न कहता था, न ले जाने वाले ससुराली कुछ कहते थे, न भेजने वाले मायके के कुछ बोलते थे।

एक दिन तारो बिलकुल अकेली बैठी हुई थी। पूरो उसके पास जाकर बैठ गई। पहले भी कई बार उससे थोड़ी-बहुत बातचीत कर चुकी थी, आज उससे बातें करने के लिए बैठ ही गई।

''तारो! कोई सयाना तो बताता होगा, तुझे क्या हुआ है?''

''कुछ भी नहीं।''

''किसी ने नब्ज़ तो देखी होगी?''

''वर्क वाले मुरब्बे और अर्क की बोतलें पीते-पीते मैं थक गई हूं।''

''तारो, कुछ तो बता, क्यों अपनी जान की गाहक बनी है?''

''अच्छा है, धरती का कुछ भार हल्का हो जाएगा, बहिन! तू क्यो चिन्ता करती है?''

''धरती पर तो न जाने कितना भार पड़ा हुआ है, तेरे न रहने से कितना कम हो जाएगा! अपनी मां से पूछकर देख, जिसने तुझे अनेक कष्ट झेलकर पाला है।''

''पाला होगा'', तारों ने बेपरवाही से कहा, ''दो-चार दिन रो-धोकर अपने-आप चुप हो जाएगी। वह कौन-सी सुखी है!''

''पर ऐसी क्या बात है? मां से कह, तुझे कुछ दिन और न भेजे।''

''फिर क्या फर्क पड़ जाएगा! जैसी यहां हूं, वैसी वहां।''

''हां, लड़कियों को कोई कितने दिन रख सकता है।''

''लड़कियां,...हूंह...'' और तारो बुड़बुड़ाकर चुप हो गई। तारो के मन में न जाने क्या उलझन पड़ी हुई थी, न जाने वह क्या कहना चाहती थी, पर कह न पाती थी।

''लड़कियों का क्या है, मां-बाप चाहे जिसके हाथ में उसके गले की रस्सी पकड़ा दें।'' तारो ने थोड़ी देर ठहरकर कहा।

''वहां का पानी अच्छा है?'' पूरो ने पूछा।

''अच्छा न भी हो तो अच्छा ही है।'' तारो ने उत्तर दिया।

''हो सकता है, तुझे वहां का पानी माफिक न आया हो!'' पूरो ने बात को चलाए रखने के लिए कहा।

''लड़कियों को सदा पानी माफिक आता है।'' तारो ने कुछ ऐसा कहा कि पूरो उसके मुख की ओर देखती रह गई।

''तारो, मैं तेरी अपनी ही हूं, तू कुछ बताती क्यों नहीं?'' पूरो ने ऐसे अपनेपन से कहा कि तारो का हृदय खुल गया।

''बहिन! मैं क्या बताऊं, लड़कियों को भगवान ने कुछ कहने योग्य ज़बान ही नहीं दी।''

''ठीक है तारो!''

''मां-बाप के पास मेरे लिए कोई जगह नहीं है, क्योंकि किसी भी लड़की के लिए मां-बाप के पास जगह होती ही नहीं, और मेरे पति के पास भी मेरे लिए जगह नहीं है, क्योंकि उनके दिल और घर में एक और औरत बसी हुई है।''

''हैं! तारो, क्या तेरे आदमी का पहले ब्याह हो चुका था? तो फिर तेरे मां-बाप ने तुझे वहां क्यों दे दिया?''

''उन्हें पहले खबर नहीं थी और न ही उसका पहले ब्याह

हुआ। उसने तो बस एक औरत को घर में रखा हुआ है।"

"पर उसके मां-बाप को तो खबर होगी?"

"जानते सभी थे। वह औरत उनकी जात की नहीं है, नीच जात की है। उसके मां-बाप कहते थे कि बहू घर में अपनी ही जात की आनी चाहिए।"

"पर उन्होंने यह न सोचा कि परायी बेटी का क्या हाल होगा?"

"दूसरों के दुःख की कौन परवाह करता है, बहिन! फिर वह लोग कहते हैं, हम रोटी देते हैं, कपड़ा देते हैं, खुला हाथ है, फिर किस बात का दुःख है?"

"जैसे औरत को केवल रोटी और कपड़ा ही चाहिए?" पूरो ने कहा।

"मेरे हृदय में आग-सी धधक उठती है। तू नहीं देखती, सब देखते हैं। पूरो, दो बरस हो गए हैं, रोटी और कपड़े के लिए मैं उसे अपना शरीर बेचती हूं; देख, मैं वेश्या हूं...देख, मैं वेश्या हूं..." कहते-कहते तारो गिर पड़ी, उसकी मुट्ठियां भिंच गईं, उसकी आंखें ऊपर चढ़ गईं, उसका शरीर लकड़ी के फट्टे की भांति अकड़ गया।

पूरो डर गई। तारो के घर में उस समय और कोई नहीं था। पूरो यह न जानती थी कि उसे क्या करना चाहिए। वह डर रही थी, घबरा रही थी। वह तारो की टांगें दबाने लगी, उसके कंधे दबाने लगी, उसके तलवे सहलाने लगी।

तारो को होश आ गया।

"तू मुझे हाथ मत लगा, मैं वेश्या हूं, तू देखती नहीं...तू देखती नहीं..." तारो ऐसी ही बातें कर रही थी।

पूरो सोच रही थी कि अभी इसे होश नहीं आया है कि इतने में तारो की मां आ गई।

"हाय, रे, मैं क्या करूं! एक तो हमें हमारी किस्मत ने मार डाला, अब इसकी बातें मार डालेंगी।" तारो की मां निढाल-सी

होकर बैठ गई। पूरो चुप रही।

''इसने और इसके भाई ने तो हमारी जान हलकान कर रखी है। लाहौर कालिज में पढ़ने क्या गया है, बहिन को भी पढ़ा-पढ़ाकर बिगाड़ दिया है। देख, कैसी ऊलजलूल बातें करती है।'' तारो की मां ने दुखपूर्वक कहा।

''अम्मा, जुल्म भी तो बिचारी पर बहुत ही हुआ है।'' पूरो ने कहा।

''बेटा, हमने लड़की दे दी, हमारा मुंह बन्द हो गया। हम अब क्या बोल सकते हैं! वह अच्छी तरह रखे, दु:ख दे, मर्द की जात है।'' तारो की मां ने कहा।

''मेरे मुंह पर ताला डाल दिया गया, मेरे पैरों में बेड़ी डाल दी गई, उसका क्या बिगड़ा? भगवान ने उसे बन्धन में न डाला उसे बांधने के लिए भगवान जन्मा ही नहीं। सारी रस्सियां भगवान ने मेरे पैरों में ही डाल दीं।'' तारो की मुट्ठियां भिंच गईं, उसकी टांगें फिर अकड़ गईं। उसकी मां ने उसके मुंह पर पानी के छींटे मारे, चुल्लू भर-भरकर उसके मुंह में पानी डाला।

पूरो ठक-सी हो गई थी। आज उसने पहली बार अनुभव किया था कि लड़कियां इस तरह भी सोच सकती हैं, लड़कियां इस तरह भी बोल सकती हैं। वैसे तो पूरो के मन में भी गुबार उठा करते थे, पर उन्हें व्यक्त करना उसे न आता था।

''यह धोखा है, निरा धोखा है। मेरा ब्याह नहीं हुआ, तुम सब झूठ बोलते हो। तुमने मुझे क्यों पकड़ रखा है? परे हटो...'' और बेसुध तारो अपने पैरों को धरती पर पटकने लगी।

''तारो, होश में आ। कैसी बातें मुंह से निकालती है! कोई सुनेगा तो क्या कहेगा! वह तेरा पति है, ज़रा मुंह में लगाम दे, ऐसे न बोल।'' तारो की मां ऐसे कह रही थी, मानो बेसुध पड़ी तारो को झिड़क रही हो, वैसे उसकी आंखें भर आई थीं।

तारो की चेतना कभी लौट आती थी, कभी वह फिर अचेत हो जाती थी।

"वहां जाकर ऐसा पागलपन मत बखेरना। अपनी जीभ को ठिकाने रख। वह समझे या न समझे, ईश्वर तो गवाह है कि वह तुझे ब्याहकर ले गया है।" तारो की मां कह रही थी।

"मां, ईश्वर ने अगर मेरे ब्याह की गवाही दी है तो झूठी गवाही दी है। मां, मेरा ब्याह नहीं..." तारो पागलों की भांति छत की लम्बी-लम्बी कड़ियों की ओर देखने लगी। पूरो तारो के चेहरे की ओर देख रही थी, तारो जोकि सब कुछ सोचने, सब कुछ कहने के बाद भी विवाह के इस महान असत्य से मुक्त न हो सकती थी, वरन् उसकी आयु के दिवस बड़ी द्रुत गति से जीवन के सत्य-असत्य को पीछे छोड़ते आगे बहुत जा रहे थे।

गोधूलि की बेला थी। पूरो हृदय पर बोझ लिए हुए उठ खड़ी हुई। पूरो का मन मानो इस भरे-पूरे संसार से एकाएक उचाट हो गया।

पिछले कुछ दिनों से पूरो अपने घर की दीवारों में परच गई थी। रशीद की छोटी-छोटी ठठोलियों ने, घर के छोटे-बड़े कामकाज ने, और सबसे अधिक जावेद की तोतली बोली ने मानो पूरो के उचाट मन को पतले-पतले धागों से लपेट लिया था। उसका मन कुछ टिक गया था। जब तारो की बावली बातों ने जैसे पूरो के मन पर लिपटे कई धागों को तोड़ दिया। उसका मन विकल हो गया। रात को रोटी-टुकड़ा करते समय उसे नमक-मसाले का अन्दाज़ भी भूल गया, दाल गुलभत्ता हो गई, रोटियां कच्ची-पक्की रह गईं।

आगे के दिनों में भी उसकी उदासीनता में कुछ अन्तर न पड़ा। फिर न जाने उसने क्या-क्या संकल्प धारण कर लिए। वह दिन में एक बार भोजन करने लगी। पहर रात रहते जाग उठती, ध्यान करती और घंटों अपनी आंखें और कान बन्द किए रहती, मानो उसने संसार से अपना चित्त हटा लिया हो।

पूरो की नींद कम हो गई। उसका खाना कम हो गया। धीरे-धीरे उसने अपने लिए सूखे छानस में नमक डालकर केवल

एक रोटी पकानी आरम्भ कर दी। उस रोटी में न वह घी चुपड़ती, न ही उसे दूध या दही के साथ खाती। उसी एक रोटी के सहारे वह पूरा दिन काट लेती। कुछ ही दिनों में पूरो की आंखों के नीचे नीले-नीले हलके पड़ गए, उसका सारा शरीर कान्तिहीन हो गया।

इधर कुछ दिनों से रशीद भी बातचीत में पूरो का मन बहलाने में अधिक व्यस्त हो गया था। रोज़ों और नियम-व्रत आदि को लेकर वह हंसी-ठठोली करता, पूरो के मन को पलटने की चेष्टा करता, और प्यार भी पहलेसे अधिक करने लगा था; किन्तु रशीद ने सारे जतन विफल रहे। पूरो के मन और मस्तिष्क पर रशीद के प्रयत्नों का कोई प्रभाव न पड़ा। पूरो के आचार-व्यवहार में कोई अन्तर न आया।

प्रतिदिन के इस समादर के बाद मानो अब रशीद का हृदय बुझने लगा था। दिन-दिन उतरता हुआ पूरो का मुंह रशीद से देखा न जाता था। उसके घर में मानो वीरानी ने अपने पैर जमा लिए थे। रशीद के चेहरे पर भी एक वेदनापूर्ण मौन दीख पड़ने लगा था। दोनों प्राणी घर की, समाज की, शरीर की दीवारों में घिरे हुए थे, पर दोनों के बीच जैसे अब एक भीत खड़ी हो गई थी।

पूरो के यहां एक भैस थी। वह नियम से दूध जमाती, दही रिड़कती, रशीद के खेतों में काम करने वाले जब पशुओं के लिए चारा लेकर आते तो पूरो उनको और उनके बच्चों को गिलास भर-भरकर लस्सी लेती, ऊपर से मक्खन के पेड़े भी डाल देती थी। पूरो के मुंह में कुछ न पड़ता। रशीद का मन भी खाने-पीने से हट-सा गया था। घर के चूल्हे में आग जलती अवश्य थी, पर घर की बोलचाल पर और जीवन की हरियाली पर जैसे कोहरा जम गया था।

जावेद के भोले मुख पर भी जैसे अपने माता-पिता के उदास मुख की परछाईं पड़ गई थी। जावेद के लिए भी कोई विशेष लाड़ न था, यद्यपि पूरो उसके सारे काम नियम से करती थी और रशीद

उसे दिल से प्यार करता था।

एक रात सोते-सोते रशीद को ज्वर हो गया, उसका शरीर जलने लगा। सवेरे जब पूरो ने रशीद के माथे पर हाथ रखकर देखा तो रशीद को बहुत तेज़ बुखार चढ़ा हुआ था।

गांव के हकीम की दवा-दारू हुई। रशीद के ज्वर आते तीन दिन हो गए थे जब हकीम ने शंका प्रकट की कि रशीद को शायद मियादी बुखार हो गया है।

रशीद की बीमारीने पूरो के नेम-धरम और वैराग्य को अपनी ओर खींच लिया। पूरो दवा-दारू देती, रशीद के शरीर को दबाती, चौके-चूल्हे को देखती थी। जावेद का मुंह उतरा हुआ दीख पड़ने लगा। दुपहरी चढ़ जाती, जावेद के मुंह पर फिटकार बरसने लगती, किन्तु पूरो को उसकी सुधि लेने का अवकाश न मिलता था। और कई रातें बीत गईं और कई दिन बीत गए, रशीद का बुखार न हटा।

''पूरो! मेरा गुनाह बख्श दे। मेरा कसूर माफ कर। पूरो... पूरो...'' रशीद ने बुखार की तेज़ी में कहा। रात्रि का तीसरा पहर था। पूरो घबरा उठी। इतने दिनों की लगातार चिन्ता और रातों के जागरण ने उसे पहले ही थका डाला था। वह उठकर घबराई हुई-सी रशीद की खाट के पास बैठ गई। रशीद के माथे पर हाथ फेरती रही, रशीद के पैर दबाती रही, पर रशीद को अपना होश न था।

''अच्छा पूरो, मैं चलता हूं...पूरो, मेरी रूह...'' और रशीद टूटे-फूटे शब्द बोलता रहा। पूरो का दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा।

''बस कर, रशीद, मेरे घावों पर नमक मत छिड़क।'' पूरो ने आर्त स्वर में कहा; पर रशीद को बिलकुल होश न था, वह उसी प्रकार अस्पष्ट शब्द बोलता रहा। कोई-कोई बात पूरो की समझ में आ जाती, और कई बातें रशीद के कंठ से उठकर उसके होंठों पर ही शेष हो जातीं।

प्रलय-सी काली अंधकारमय रात थी। पूरो घर में अकेली थी, पर उसे ऐसा लग रहा था, मानो वह इस विशाल संसार में अकेली हो। रशीद के सिवा उसके घावों पर फाहा रखने वाला और कौन था!

पूरो ने रशीद के माथे पर घड़े के ठंडे पानी में भिगो-भिगोकर पट्टियां रखीं। उसका माथा चूल्हे की ईंट की भांति गरम था। वह पट्टियां भिगोती रही। कटोरे का पानी मिनटों में ही एक काढ़ा-सा बन गया। पूरो ने पानी बदला। उसकी आंखों से आंसू ढुलक-ढुलककर रशीद के माथे पर गिरते रहे।

सवेरे पौ फटते तक, न जाने पानी की ठंडक के कारण या आंसुओं के गीलेपन से, रशीद का ज्वर उतर गया। उसका शरीर घुल गया था। उसकी बेहोशी आराम की नींद में बदल गई।

जब रशीद की आंख खुली, उसे अपना शरीर हल्का-सा प्रतीत हुआ। आज उसके माथे में पीड़ा की चीसें नहीं थीं। रशीद ने आराम की एक लम्बी सांस लेकर करवट बदली। पूरो रशीद के सिरहाने की ओर ज़मीन पर बैठी-बैठी चारपाई का सहारा लिए सो गई थी। उसके एक हाथ में अभी तक कपड़े की पट्टी थी और पांव के पास पानी का कटोरा पड़ा हुआ था।

पूरो को देखकर रशीद का जी भर आया। उसने उसके चेहरे की ओर देखा। उसका उतरा हुआ मुख नींद में डूबा हुआ था।

अपनी बीमारी और पूरो की टहल रशीद के मन में एक उथल-पुथल-सी मचा रही थी। पूरो के मुख से, और कपड़े की पट्टियों से रशीद ने भली भांति जान लिया कि बीती रात कितनी कठिन रही होगी। रशीद ने अपना कमज़ोर-सा दाहिना हाथ उठाकर पूरो के सिर पर धर दिया। पूरो के बिखरे हुए बालों में रशीद की उंगलियां घूमती रहीं। उसकी उंगलियां पूरो के कानों को, उसके माथे को धीरे-धीरे छूती रहीं। पूरो का सारा शरीर निद्रा की गोद में मग्न था। रशीद की आंखों के कोनों से ढुलक-ढुलककर आंसू बिस्तर पर पड़ते रहे। रशीद एक

विचित्र-से आनन्द का अनुभव करता हुआ जागता रहा।

रशीद ने पूरो के शरीर पर तो पूरा अधिकार कर लिया पर उसकी यह वासना थी कि वह पूरो की आत्मा पर भी अधिकार प्राप्त कर ले। पूरो का उदास रहना उसे खाए जाता इस समय पूरो तोड़ी हुई सरसों की डंडी की भांति रशीद चारपाई से लगी सो रही थी।

रशीद में शक्ति नहीं थी, पर उसके हृदय में यह भाव रहा था कि वह पूरो को अपने कलेजे से लगा ले। पिछले कुछ की घोर उदासी के कारण रशीद का हृदय अत्यन्त पीड़ित था समय रशीद को पूरो के मुख पर स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि पू तन-मन में रशीद के सिवा और कुछ नहीं था। रशीद ने अ बांह और आगे बढ़ाकर पूरो के गले से लगा दी। शायद बांह ज़ोर से लिपटी, पूरो जाग गई। वह कांप उठी। पर रशीद ठीक उसका ज्वर उतर चुका था, वह बड़ी निढाल आंखों से पूरो को रहा था।

रशीद को खाट पर पड़े पूरे दस दिन हो गए थे। उसका उतर गया था। वह बहुत ही दुर्बल हो गया था, पर उसक बहुत उल्लसित था। पूरो ने अपना सम्पूर्ण प्रेम रशीद की ओर लिया था। रशीद के पास बैठ-बैठकर पूरो ने दिन-रात एक दिए थे। पूरो जावेद को बना-संवारकर रशीद के पास बिठ थी। उसने जावेद को कितने ही छोटे-छोटे शब्द बोलने सिख थे। जावेद रशीद के पास-पास घुटलियों चलता, उसकी करता था, मां के सिखाए हुए शब्दों को तोड़-तोड़कर बोलत रशीद का मन उत्फुल्ल था, शरीर फूल की भांति हल्का था मन ही मन अपनी बीमारी को दुआएं देता था। उसके आं खुशी दुगुनी-तिगुनी होकर लौट आई थी।

पूरो का मन करने लगा कि वह सचमुच भूल जाए कि ने उसके साथ बुरा किया था। वह रशीद को बहुत प्यार लगे। रशीद उसका पति था, रशीद उसके पुत्र का पिता था

यही एक सत्य था और सब कुछ झूठ...

एक और पिंजर

अगले कुछ दिनों में रशीद ने एक-दो फेरे अपने गांव छत्तोआनी के लगा लिए थे। उसके भाई के साथ जो साझे में उसकी ज़मीन थी, उसका अनाज-दाना लेकर रशीद ने बेच लिया था। पर पूरो जिस दिन से सक्कड़आले आई थी, उस दिन से उसने गांव के बाहर पांव नहीं धरा था। कभी रशीद कुछ कहता तो पूरो हंसकर कह देती, 'मैं न अपनी मर्ज़ी से इस गांव में आई थी, न अपनी मर्ज़ी से इस गांव में जाऊंगी।'

जावेद अब दौड़ता फिरता था। रशीद वैसे ही शुरू से स्वभाव का नरम था, पूरो को वैसे ही वह बहुत प्यार करता था, पर जावेद पर उसका अपार स्नेह था। जावेद को चूमते, प्यार करते वह अघाता नहीं था। जावेद अब कुछ-कुछ तुतलाकर बोलने लगा था। अब्बा-अब्बा कहता रशीद की टांगों से चिपट जाता था।

पूरो चूल्हे को चिकनी मिट्टी से पोतती तो जावेद दौड़ा-दौड़ा आकर गीली मिट्टी को थपकने लगता, पूरो के बने हुए चूल्हे को बिगाड़ जाता। पूरो लस्सी में नमक मिलाकर पीने लगती तो जावेद हल्दी और मिरचें उसके लस्सी के कटोरे में डाल देता। जावेद किवाड़ों के पीछे छुप जाता, रशीद उसे ढूंढ़ता रहता। जावेद की इन छोटी-छोटी क्रीड़ाओं से, उसकी हंसी से रशीद मकई के दाने की भांति खिलता रहता।

एक दिन एक स्त्री 'घुग्गू-घोड़े' लेकर गलियों में बेचती फिर रही थी। जावेद ने मिट्टी के छोटे-छोटे खिलौनों को और सरकंडे के झुनझुनों को देख लिया। लगा पूरो का पल्ला खींचने। पूरो ने मुट्ठी-भर अनाज और पुराने कपड़े देकर घुग्गू-घोड़े ले लिए। वह

अभी गली में ही बैठी थी कि दूर से दौड़ती हुई एक पागल और
गुज़री।

स्त्रियों ने दौड़कर अपने बच्चे छिपा लिए, दरवाज़े बन्द क
लिए, छोटे अनजान बालक चीखने-चिल्लाने लगे। पगली
शरीर पर पिंडलियों जितनी ऊंची एक सलवार थी, गले में को
कपड़ा न था। उसका रंग शायद धूप से झुलस गया था, या फिर थ
ही काला। उसके सिर पर बालों की उलझी हुई धूल-सनी लटें थीं
जान पड़ता था, मानो जब से वह जन्मी थी, कभी नहाई नहीं थी
अपनी टांगों को वह अजीब तरह मरोड़ती थी, बांहों को वह अजी
तरह फैलाती थी, चलते हुए भी दौड़ती हुई लगती थी। उसके मु
की ओर देखते ही उसकी डरावनी हंसी में बिखरे हुए दांतों की ओ
दृष्टि जाती थी। उसके सूखे हुए, जले हुए शरीर से उसकी आयु क
कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता था। बस, एक पिंजर था, ज
दौड़ता फिरता था।

पूरो देखती खड़ी रही। पगली दौड़ती हुई आई और खिलौने
बेचने वाली कुंजड़िन के छाज में से अपनी दोनों मुट्ठिय
'घुग्गू-घोड़ों' से भरकर भाग गई। उसकी डरावनी चीखती हुई सी
हंसी की आवाज़ देर तक गली में गूंजती रही।

पगली सारा-सारा दिन घूमती रहती, खेतों में फिरती रहती
क्यारियों में से भी कुछ तोड़कर खा लेती। कभी-कभी स्त्रिय
एक-दो रोटियां बैठी हुई पगली के आगे डाल देतीं, वह उन्हें चब
जाती। कभी-कभी स्त्रियां कोई फटा-पुराना कुरता उसे पहन
देतीं, पगली खिलखिलाकर हंसती। कुरता पहने रहती, फिर उसके
बटन तोड़ डालती, फिर किसी दिन कुरते को दांतों से फाड़ देती।
फटी धज्जियां उसके गले में लटकी रहतीं। फिर पगली उन
धज्जियों को भी खींच-खींचकर अपने शरीर से दूर कर देती।
कभी-कभी अपने शरीर पर से सब कुछ उतार फेंकती। स्त्रिया
फिर कोई फटी-पुरानी सलवार, कोई फटा-पुराना कुरता उसे
पहना देतीं।

पगली अब गांव सक्कड़आली में जैसे रच-बस गई थी। उसे प्रतिदिन देखने की सबको सबको आदत-सी पड़ गई थी। कभी-कभी गांव के छोटे-छोटे लड़के उसके पीछे लग जाते, तालियां बजाते, पगली को दौड़ाते, आप उसके पीछे-पीछे दौड़ते। फिर रास्ता चलता कोई सयाना आदमी उन्हें झिड़क देता। लड़के उसका पीछा छोड़ देते।

नन्हे बालकों ने हठ करना छोड़ दिया। मायें उन्हें पगली का डरावा देती थीं, 'पगली पकड़कर ले जाएगी।' रोते हुए बच्चे सहमकर चुप हो जाते थे।

पगली किसी पुआल के नीचे पड़ रहती। कभी कोई पानी का प्याला उसके पास धर जाता, कभी कोई रोटी के टुकड़े उसके सिरहाने रख देता। किसी दयालु ने एक फटी हुई रज़ाई एक पुआल के नीचे धर दी थी। पगली रात को नियम से वहां जाकर पड़ी रहती थी।

पगली बस दौड़ती थी और हंसती थी। किसी के बच्चे को कभी कुछ भला-बुरा नहीं कहती थी, किसी की चीज़-बस्त को कभी हाथ नहीं लगाती थी। जमीन पर गिरे हुए रोटी के टुकड़ों को उठा लेती, ज़मीन पर पड़ी हुई वहीं किसी खाने की चीज़ को चाट लेती थी।

कुछ ही दिनों में सबने देखा, और पूरो ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि पगली का नंगा पेट उभरता आ रहा है। सारे गांव की स्त्रियां जैसे लाज के मारे गड़ रही हों। पगली न कुछ बोलती थी, न कुछ बताती थी।

पगली का शरीर दिन-दिन भरता जा रहा था।

गांव की स्त्रियों का जी करता था कि वे पगली के शरीर को ढककर रखें। वे उसे किसी भुइहरे में डाल दें। पगली की समझ में कुछ न आता था। वह पहले की ही भांति हंसती रहती थी, वह वैसे ही दौड़ती रहती थी।

एक दिन कुछ आदमियों ने मिलकर पगली को गांव के बाहर

ले जाकर छोड़ दिया। अंधेरा गहरा हो गया था। उस रात किसी पगली को नहीं देखा। सब सोचने लगे कि पगली अब इस गांव गई। आंख से दूर, दिल से दूर, अब वह किसी दूसरे गांव च जाएगी।

दूसरा दिन अभी आधा भी न बीता था कि पगली ठीक पह की भांति गांव की गलियों में दौड़ रही थी। वह ठीक पहले की भांति खेतों में हंस रही थी।

''वह कैसा पुरुष था! वह अवश्य ही कोई पशु होगा, जिस इस जैसी पागल स्त्री की यह दुर्दशा बना दी!'' अब स्त्रि त्राहि-त्राहि करती थीं। उनका जी पगली के ध्यान से मिच उठता था।

'जिसके पास न सुन्दरता थी, न जवानी थी, मांस का ए शरीर, जिसे अपनी सुध न थी, जो केवल हड्डियों का एक जीवि पिंजर...। एक पागल पिंजर था... चीलों ने उसे भी नोच-नोचक खा लिया...' सोच-सोचकर पूरो थक जाती थी।

पगली का पेट दिन-दिन बढ़ता जा रहा था।

पिंजर में पिंजर

वही रात के पिछले पहर का अंधेरा था, जिसमें पू नियमपूर्वक खेतों को जाया करती थी। पूरो अभी बाहरवा पगडंडी पर आई ही थी कि एक पेड़ के तने के पास उसे एक मनु की आकृति-सी गिरी दीख पड़ी। पूरो कांप उठी। पर वह ऐसे कच जिगरे की औरत नहीं थी। धीरे से वह गिरे हुए शरीर की अ बढ़ी। पूरो के लिए उसे पहचानना कठिन नहीं था। पगली ए पत्थर की मूर्ति की भांति निश्चल उस पेड़ के नीचे पड़ी हुई थ उसके पैरों के पास एक नवजात बच्चे का शरीर था, जिसकी ना अभी उसकी आंवल के साथ जुड़ी हुई थी।

पूरो एक लम्बी सांस खींचकर रह गई। उसकी आंखों के आगे अंधेरा आ गया। फिर जैसे उसे कुछ सुध न रही।

पूरो की रीढ़ की हड्डी में एकाएक कम्पन दौड़ गया। वह उलटे पांव दौड़कर रशीद को बुला लाई।

पूरो ने एक फटी हुई चद्दर का टुकड़ा पगली के शरीर पर डाल दिया। फिर रशीद ने पगली के नाड़ी टोही। नाड़ी भी टोहने की आवश्यकता नहीं थी, पगली के मुख पर मौत की मुहर स्पष्ट लगी दीख पड़ती थी। बालों की एक लट उसके माथे पर जम गई थी।

प्रकृति अपनी पूरी धड़कन के साथ पगली के बालक में धड़क रही थी। बालक के मुंह में उसका अपना दाहिना अंगूठा पड़ा हुआ था।

"या अल्लाह!" रशीद के मुख से निकला और चाकू से उसने बालक की नाल को काट दिया।

पूरो ने बालक को अपने सिरवाले पल्ले में लपेट लिया, और फिर दोनों जीव घर को लौट गए।

प्रातःकाल की धुंध की भांति यह खबर सारे गांव में फैल गई। जो स्त्रियां आटा गूंध रही थीं, उनके हाथों से परात छिटक गई। जो रोटी बनाने जा रही थीं, वे बलते तन्दूर छोड़-छोड़कर पूरो के घर आतीं और बालक को देख-देख जाती थीं।

रूई के गाले जैसे चिट्टे और निर्मल बालक को पूरो ने नहलाकर एक खटोली में लिटा रखा था। कुनकुने दूध में कपड़े का छोटा-सा टुकड़ा भिगो-भिगोकर पूरो ने उसके होंठों से लगाया। बालक पूरी चेतनता से दूध की बूंदें चूसने लगा। जावेद अपने घर आए छोटे-से पाहुने को झुक-झुककर देखता था।

"रब तेरा भला करे!", "तेरे बच्चे जिएं!", "बड़ा पुण्य किया है!"—गांव की स्त्रियां आ-आकर कहतीं, अनाथ बालक पर दया करने के लिए शाबाशी देतीं और लौट जातीं।

दो-चार आदमियों ने मिलकर पगली के शव को ठिकाने

अंधेरा हो चला था। पूरो बच्चे के काम-काज में लगी थी। रशीद ने लालटैन की बत्ती साफ करके उसे जलाया। बा ने अपनी मोटी-मोटी चेतन आंखों से लालटैन की ओर देखा। उसकी कच्ची दृष्टि टिकती नहीं थी। फिर उसका ध्यान वि दूसरी ओर हो गया।

पूरो विचारों में डूब गई।

सोचने लगी, कैसा था वह मर्द, जिसने पगली के काले-क कंकाल को हाथ लगाया! क्या ऐसा पगली की मर्ज़ी से हुआ, उसके साथ ज़ोर-ज़बरदस्ती की गई? उस मर्द को कभी भूले से ध्यान न आया कि उसने पगली पर कितना भारी अत्याचार कि है! उस मर्द को कभी अपने बालक का भी ध्यान न आया, जि उसने पगली के पास धरोहर के रूप में रखा था!

शायद पगली यह जानती ही न होगी कि उसके घर ए बालक का जन्म होगा। प्रसव की पीड़ा उसने कैसे सही होगी उसपर किसी दाई को दया न आई। रात के अंधेरे में वह चीख रही होगी! खुली हवा के झोंके उसके शरीर में शूल मारते रहे होंगे ठंडी भूमि पर पड़ी वह बिलखती रही होगी! परन्तु प्रकृति के कठो नियम में बंधा उसका बालक दर्द पूरा होने पर अपने-आप दुनिय में आया होगा, भूमि पर गिर पड़ा होगा, और पीड़ा से निचुड़ी हु पगली की जीवन-डोर टूट गई होगी!

फिर पूरो सोचने लगी—पगली को जीकर भी क्या लेना था वह अपने बालक की क्या देख-रेख कर सकती थी? अच्छा हुआ उसकी जान छूट गई। उसका बालक कितना सुन्दर है! टेढ़ी-मेढ़ी हड्डियों के झुलसे हुए पिंजर में कैसे इतना सुन्दर बालक पल गया कैसी मोटी-मोटी आंखें हैं इसकी! सारे नक्शे सुन्दर हैं। पूरे मर्द क एक छोटा-सा रूप! न जाने इसका पिता अभागा कौन है!

सोचते-सोचते पूरो ऊंघ गई। पूरो ने देखा, एक दौड़ती घोड़ी पर डालकर रशीद उसे भगाए ले जा रहा है। किसी बाग की एक

छोटी-सी कोठड़ी में पूरे तीन दिन रखकर रशीद ने पूरो को घर से निकाल दिया है। पूरो पागल हो गई है। वह गलियों में घूमने लगी है। उसके पेट में एक बच्चा सरसराने लगा है, और फिर...फिर एक दिन एक पेड़ की छाया में उसने एक बालक को जन्म दिया है, जिसकी शक्ल-सूरत बिलकुल जावेद की सी है। उसका बालक उसकी छाती से लगकर दूध के लिए रो रहा है, पर पूरो के दूध उतर नहीं रहा है...

कांपकर पूरो जाग उठी। सामने खटोली में उसका नया बालक टिटियाकर रो रहा था। उसने उसे उठाकर छाती से लगा लिया, फिर डरकर अपने जावेद के मुख की ओर देखा, वह अभी कुछ ही देर हुई, पासवाली चारपाई पर सो गया था। फिर उसने डरते-डरते बाहर चूल्हे के पास बैठे हुए रशीद की ओर देखा। रशीद अभी तक उसे छोड़कर नहीं गया था और न ही उसने पूरो को अपने घर से निकाला था। वह अपने घर में सही-सलामत थी, रशीद उसका दयालु पति था, जावेद उसका घुंघराले बालोंवाला सुन्दर पुत्र था। उसकी गली वाली कम्मो भी चोरी-छिपे उससे घुट-घुटकर बातें किया करती थी, पूरो के प्यार में हिस्सा बंटाती थी। और पूरो का परिवार और बढ़ गया था। उसके घर में भगवान ने अपने-आप

बालक का माथा चूम लिया।

फिर उसने उठकर हथेली भरकर सफेद जीरा खाया। जावेद ने पूरे दो बरस पूरो का दूध पिया था, और उसका दूध छुड़ाए उसे अभी बहुत दिन नहीं हुए थे। उसने यह सुना हुआ था कि सफेद जीरा खाने से औरत के दूध उतर आता है। पूरो ने छोटे बच्चे को अपने स्तन से लगा लिया।

तीन दिन के बाद सचमुच पूरो के दूध उतर आया। गांव की स्त्रियां देख-देखकर अचरज करती थीं। लड़का पूरो का छोटा पुत्र बनकर पलने लगा।

दावेदार

जुड़े हुए उपलों में जैसे धीरे-धीरे आग सिंकती है, उसी प्रकार गांव में खुसर-फुसर चल रही थी: ''पगली हिन्दू थी, उसके बच्चे को मुसलमानों ने ले लिया है, सारे गांव में देखते-देखते उन्होंने हिन्दू बच्चे को मुसलमान बना लिया है...''

जैसे बिल्ली अपने बच्चे को दुनिया की निगाहों से छुपाकर रखती है, वैसे ही पूरो भी छोटे लड़के को कलेजे से लगाए मकान की भीतरी कोठड़ी में बैठी रहती थी। फिर भी बातें दीवारों को भेदकर उसके कानों में पड़ जाती थीं।

पहले तो एक-दो हिंदू घरों में बैठकें होती रहीं।

''यह बात पक्की है कि पगली हिंदू थी।'' कोई कहता।

''हमने अपने कानों से सुना है, वह लालामूसे के एक अच्छे घराने की लड़की थी, अच्छी भली थी जब उसकी सौतन ने उसे मुर्दे की राख खिला दी। बस, तभी से वह पागल हो गई।'' कोई कहता।

''सुना है, उसके घरवालों ने उसे दरवाज़ों में बन्द करके रखा, पर उसके भाग्य में तो खुआरी लिखी थी।'' कोई कहता।

''अजी ये तो कोरी बातें हैं। मैंने खुद उसकी बांह पर 'ओम्' खुदा हुआ देखा है।'' कोई धरती पर हाथ मारकर कहता।

''अंधेरा है, यारो, हमारे देखते-देखते मुसलमान हमारी आंख में धूल-झोंक गए।''

''धिक्कार है हम पर, हिन्दू बालक को उन्होंने मिनटों में मुसलमान बना लिया!''

''छोड़ो भी, यारो, न जाने वह लड़का किसकी बला है,

किसकी नहीं, हम उस पिल्ले को कहां बांधते फिरेंगे!" कोई जना बीच में यह भी कह देता।

"नालायक! सवाल इस समय धरम का है। इस तरह तो कल वे सारा गांव मुसलमान बना लेंगे और तू उनका मुंह देखता रह जाएगा।" एक-दो व्यक्ति एक साथ ऊंचे स्वर में बोल उठते।

कमरे की हवा ऐसी हो जाती, मानो बन्द दरवाज़ों में वह घुट गई हो।

"लड़के को हम वापस लाएंगे, देखते हैं, कौन हमारा हाथ पकड़ता है!"

"असल में यही चार पैसों की बात है न? महरी को चन्दा इकट्ठा करके दे देंगे, वह लड़के को अपने-आप पाल लेगी।" कोई जोश के साथ अपनी जगह से ज़रा आगे सरककर कहता।

"ऐसे गए-बीते तो नहीं, सारा गांव मिलकर क्या एक लड़के को न पाल सकेगा?"

"कौन कह सकता है कि लड़का भी पगली की तरह गूंगा-बहरा निकलता है, या..." बीच में फिर कोई कह उठता।

"फिर क्या हुआ, बड़ा होकर धर्मशाला में झाड़ू लगा दिया करेगा। दो रोटियां ही खाएगा न।"

फिर वे एक-दूसरे के साहस पर साधुवाद करते प्रसन्न होते।

"पहले महरी से तो पूछ लो।" कोई कहता।

"लो, देखो! क्या वह न रखेगी? पहले चांदी की जूती उसके सिर पर रखेंगे, फिर उससे बात करेंगे।"

"अरे भाई, लड़के का क्या है! धर्मशाला में तो ढोर-डंगर का ही इतना काम है, मुफ्त में काम करने वाला मिल जाएगा।"

"अजी, अभी इसकी बिसात ही क्या है, लड़का पल तो जाए! पहले उसका..."

"अरे, तुम लोग मरे क्यों जाते हो! धरम के नाम पर इतना भी नहीं कर सकते तो अंधे कुएं में कूद मरो।"

"तुम्हारे खेत का पानी कोई अपने खेत में लगा ले तो तुम

उसका सिर फाड़ देते हो, आज तुम्हारा हिन्दुओं का लड़का वे उठाकर ले गए हैं तो तुम्हारे मुंह पर ताला पड़ गया है।"

कमरे की हवा ऐसी हो जाती, मानो उसमें पत्थर के कोयले का धुआं मिल गया हो।

अब जब रशीद अपने खेतों को जाता तो पास से गुज़रते हुए हिन्दू उसकी ओर कड़वी आंखों से देखते। रशीद अपने ध्यान में मग्न चला जाता।

एक-दो बार उसने बातों-बातों में पूरो से कहा कि भई, गांव की हवा अच्छी नहीं है, हमें इस झगड़े में पड़कर क्या लेना है, बात लम्बी हो जाएगी। वे लड़का ले जाएं, अगर उनकी यही मर्ज़ी है। जो लड़के के भाग में होगा, हो जाएगा।

पूरो कहती तो कुछ न थी, पर उसका मन व्याकुल हो उठता था। हड्डियों के एक छोटे-से पिंजर को दिन-रात कलेजे से लगकर उसने छः महीने का किया था। अब वह भी जावेद की भांति गोलमटोल निकलता आता था। उसकी आंखें अब पूरो को पहचानने लगी थीं। वह रशीद को देखकर बांहें फैलाने लगा था...

फिर पूरो सोचती, पहले दिन ही हिन्दुओं को उसकी सुधि क्यों न आई? वे उसे ले जाते, पाल लेते, उसे मां की सी गोद देते, उसे पिता का सा स्नेह देते। पूरे छः महीने पूरो ने रातें जागकर काटी थीं, जीरा फांक-फांककर अपनी नसों में से दूध उत्पन्न किया था, उसका मल धो-धोकर अपने नाखून घिसा लिए थे।

फिर पूरो को ध्यान आता था कि उसने लड़के को शहद चटाया था और अपने पड़ोस के मुसलमानों के घरों में पंजीरी बांटी थी कि लड़के को बड़ा होकर यह विचार न आए कि उसके जन्म पर किसी ने उसका कुछ न किया।

एक दिन गांव के प्रमुख हिन्दुओं ने रशीद को बुला भेजा। पूरो के होंठों पर पपड़ी जम गई। पूरो सोच में पड़ गई। बच्चे को पालने का बीड़ा तो उसने उठाया था, पर वे लोग रशीद को बुरा-भला कहेंगे, रशीद का अपमान करेंगे...

पूरो कह रही थी क वह भी रशीद के साथ जाएगी। वही उनके सवालों का जवाबदार थी। वह आप जाकर उनसे लड़के की भीख मांग लेगी...पर रशीद न माना, वह अकेले ही वहां चला गया, जहां उन लोगों ने उसे बुलाया था।

गांव के एक सम्मानित हिन्दू के मकान के आंगन में तीन चारपाइयां पड़ी थीं, जिनपर गांव के कुछ प्रमुख हिन्दू बैठे हुए थे। उनका विचार था कि रशीद दो-चार साथियों को लेकर आएगा या शायद न भी आवे, तब वे उससे दूसरे ही ढंग से निबटेंगे, पर रशीद बिलकल अकेला ही चला आया। सलाम-दुआ करके उनके सामने बैठ गया।

''क्यों भई, क्या सलाह है तेरी? लड़का वापस देगा या नहीं?'' हुक्के की नली मुंह से निकालकर उनमें से एक ने अपनी भारी-भरकम आवाज़ में कहा।

''मेरी क्या मजाल है! अल्लाह की देन है, मैं कौन हूं देने वाला!'' रशीद ने एक हाथ से अपने माथे को छूकर आकाश की ओर देखा।

''ये तो टालबाज़ी की बातें हैं, इन्हें छोड़ सीधी तरह बात कर।'' एक व्यक्ति ने क्रोधवेश में आकर कहा।

''मैंने तो अल्लाह के रहम पर उसे उठा लिया था। जो घड़ी, दो घड़ी और वहां न पहुंचता तो क्या पता, कोई कुत्ता-बिल्ली ही उसे मुंह में धर लेता! अल्लाह के यहां से उसकी ज़िन्दगी थी...''

''ठीक है, अगर भगवान के यहां से उसका धागा लम्बा है, तो उसे कोई तोड़ नहीं सकता। पर एक बात तुझे मालूम होनी चाहिए कि उसकी मां एक हिन्दू औरत थी, और तेरा एक हिन्दू बच्चे को उठाकर ले जाना हम सह नहीं सकते।''।

''नहीं, मुझे नहीं मालूम कि वह हिन्दू थी कि कौन। वह हिन्दू घरों से भी खाना लेकर खाती थी, मुसलमान घरों से भी...'' रशीद कह रहा था।

''पर वह तो बावली थी, तू तो बावला नहीं।'' बीच में बात

काटकर कोई बोल उठा।

"ठीक है, पर आप पहले दिन ही उस लड़के को ले लेते, पाल लेते, मैंने कब इन्कार किया था! मुट्ठी-भर वह पिंजर था। मेरी घरवाली ने जी-जान एक करके छः महीने काटे हैं। अब जब लड़का बच गया है तब आपको भी उसकी याद आई है। अल्लाह का खौफ खाइए। रब के नाम पर ही आप उसे पालेंगे, रब के नाम पर ही मैं उसे पाल रहा हूं, नहीं तो मुझे इससे और क्या हासिल है..." रशीद ने कुछ इस तरह कहा कि दो-तीन व्यक्तियों के मुख पर यह भाव झलकने लगा कि भई, छोड़ो, जाने दो किस्से को, पालता है तो पाले, मुफ्त की बला गले में डाल रखें।

"देख, हम बात को बढ़ाना नहीं चाहते। वह न हमारा कोई लगता है, न तेरा कोई लगता है। यह तो धरम का सवाल है, सो तुझे धरम की राह में नहीं आना चाहिए। झूठमूठ तू अपनी जान को संकट में डाल लेगा। किसी ने तेरे साथ कुछ बुरा-भला कर दिया तो हम ज़िम्मेदार नहीं होंगे। सो अपने-आप सीधे रास्ते पर आ जा और लड़का वापस कर दे। और जो इतने दिन खिलाने-पिलाने के दो-चार रुपये लेना चाहता हो, वह भी ले ले।" एक ने कहा।

"बेशक! बेशक!" सब बोल उठे।

"अल्लाह...अल्लाह... रशीद ने दोनों हाथ अपने कानों पर रख लिए।

"महरी खड़ी हुई है, हमारे साथ दो-तीन आदमी और चलते हैं और तेरे घर से लड़के को ले आते हैं। उसे शुद्ध हम अपने-आप कर लेंगे।"

"मैं एक बार आप सबसे विनती करता हूं कि उस लड़के पर रहम करें और वह जहां है, उसे वहीं रहने दें। मेरी घरवाली उसे अपने पेट के जाये की तरह पाल रही है।" रशीद ने दोनों हाथ जोड़कर कहा।

"हमने तुझे सीधा रास्ता बता दिया है। जो तू खैर चाहता है तो भला आदमी बनकर उठ चल। नहीं तो हम भी जानते हैं कि

सीधी उंगली घी नहीं निकला करता।"–दो-तीन आदमी चारपाइयों से उठकर खड़े हो गए।

मकान के भीतर से महरी चादर ओढ़े हुए आ गई। रशीद को खड़ा होना पड़ा। फिर सब रशीद की घर की ओर चल पड़े।

पूरो अपने मकान के दरवाज़े पर खड़ी गली की आहट ले रही थी। जैसे ही उसने रशीद को सिर नीचा किए तीन-चार आदमियों के साथ आते हुए देखा, उसका कलेजा धक् से हो गया।

पूरो की आंखों के आगे वह दिन फिर गया, जिस दिन उसकी मां उससे अलग हो गई थी, जिस दिन उसका पिता उससे बिछुड़ गया था, जिस दिन उसके भाई-बहन उससे छूट गए थे। यह लड़का उसका आत्मीय बन चुका था, इससे बिछुड़ने में भी उतनी ही पीड़ा थी।

पूरो ने दौड़कर उस लड़के को अपनी छाती से चिपटा लिया। रशीद अपने मकान के आंगन में आकर ऐसे खड़ा हो गया, मानो उसे अपनी कोई सुध-बुध न हो।

न रशीद को कुछ कहने की आवश्यकता थी, न पूरो को कुछ पूछने की।

महरी भी एक पल को ठिठक गई। पूरो की छाती से बालक को हटा लेना उसे बहुत कठिन लगा।

"जल्दी कर, देर हो रही है, फिर हमें भी तो काम पर लगना है।" रशीद के साथ आए हुए आदमियों ने तीखे होकर कहा।

महरी ने दोनों हाथ बढ़ाकर पूरो के हाथ में से बालक को ले लिया। लड़के की मुट्ठी में पूरो का पल्ला आ गया। पूरो को लगा, मानो वह लड़का अपनी मुट्ठी में भरकर उसका दिल भी लिए जा रहा हो। पूरो का पल्ला साथ खिंचता गया।

महरी ने लड़के की मुट्ठी खोलकर पल्ला छुड़ा दिया। लड़का चिल्लाकर रोने लगा, शायद अनजाने हाथों के स्पर्श के कारण।

पूरो टूटी हुई टहनी की भांति दीवार का सहारा लेकर बैठ गई। गली के मोड़ से बच्चे के रोने की आवाज़ आ रही थी।

अंधेरा पड़ने तक पूरो के स्तनों से दूध की धारें निकलने से उसकी कमीज़ गीली हो गई थी। पूरो कहती थी, लड़का जरूर भूख से बिलख रहा होगा, तभी तो उसकी छातियों से दूध की धारें बह रही थीं।

रात को पूरो के यहां न किसी ने कुछ पकाया, न किसी ने कुछ खाया।

जब जावेद सहज स्वभाव से पूछता, ''अब्बा! हमारे काके को कहां ले गए हैं?'' या ''अब्बा! हमारा काका कब आएगा?'' तब पूरो और रशीद निरुत्तर-से जावेद की ओर देखकर रह जाते, लज्जित-से सिर झुकाकर चुप हो जाते।

पूरो की आंखों के आगे कम्मो का मुख फिर जाता, उसकी आंखों के आगे रह-रहकर लड़के का मुख आता। पूरो सोचने लगी, वह टूटे हुए फूलों को क्यों अपने गले से लगाकर रखती है? टूटी हुई कलियों पर पानी छिड़क-छिड़ककर उन्हें क्यों हरा करती है? सभी पराये थे। उसका अपना कोई न बन सकता था। रशीद का मुख उसे अच्छा लगने लगा, एक रशीद ने ही उसका साथ निबाहा था। यद्यपि सबसे सम्बन्ध वाला भी वही था, फिर भी वह उसका अपना था, उसके जावेद का पिता था।

तीन दिन बीत गए। चौथे दिन सारे गांव में एक ही चर्चा चल रही थी, ''लड़का नहीं बचेगा, लड़का तो मरने को पड़ा है, लड़के का बुरा हाल है। बस, दो घड़ी का मेहमान है। जो दूध की घूंट उसके अन्दर जाती है, वैसी की वैसी बाहर निकल आती है।''

पूरो दीवारों से लग-लगकर रोती थी। उसके स्तन दूध इकट्ठा हो जाने के कारण अकड़ने लगे थे और उधर वह बच्चा था कि दूध न मिलने के कारण उसका मुंह सूख गया था। लड़के के मुंह और स्तन के दूध के बीच बड़ी दूरी पड़ गई थी।

''लड़के का दूध छुड़ा दिया है, लड़के की आह पड़ जाएगी।''

''अगर लड़का मर गया तो गांव-भर पर साड़साती आ जाएगी।''

''मैं तो अपने आदमी से कहती हूं कि भले आदमी बनो और जहां से लड़का लाए हो, वहीं छोड़ आओ।''

''हम तो आप बाल-बच्चेदार हैं, किसी की आह अच्छी नहीं होती।''

''मेरा मरद ही आप मनमानी करता है, मैं तो पहले ही मना कर रही थी कि परायी आग में कूदकर तुम क्या लोगे!''

''कहते हैं, कल रात महरी ने लड़के को ठंडा दूध पिला दिया। बस, तब से ही लड़का कुछ का कुछ हो गया।''

''भला भैंस का दूध इतने छोटे बालक को पच सकता है! लड़के को उल्टियां आने लगीं।''

''नहीं जी, नहीं, लड़का हुड़क उठा है। जब से हुआ, उसीका मुंह देखता रहा, अब और किसी से परचे तो कैसे परचे!''

''बिचारा बेज़बान है!''

गांव की हिन्दू स्त्रियां के मुंह पर यही बातें थीं। पूरो आहट लेती थी, चौंक-चौंक पड़ती थी। उसका जी करता था कि वह दौड़ी-दौड़ी धर्मशाला चली जाए, उन लोगों से विनती करे कि इस तरह किसी जीव को न मारो। लड़के को मेरी झोली में डाल दो, वह ठीक हो जाएगा।

पर पूरो को साहस न होता था, उसके पैर न उठते थे। पूरो को आशा नहीं थी कि मज़हब के पत्थर जैसे कान उसकी विनती सुन लेंगे।

उसके अगले दिन भी कोई बात न हुई।

फिर अचानक ही रशीदे-हर के मकान के आंगन में दो-तीन आदमी आकर खड़े हो गए।

''यह लो, इसकी जान तुम्हारे हवाले करते हैं, बच सके तो बचा लो।'' और उन्होंने एक सफेद कपड़े में लिपटे हुए पीले, प्रायः निर्जीव बालक को रशीद के हाथों में थमा दिया।

एक बार तो रशीदे के मन में आई कि वह कसकर एक थप्पड़ उनके मुंह पर मारे, 'मेरी छः महीने की सेवा के लिए तुम

मुझे चार ठीकरे देते थे, अब उसके पैर कब्र में लटकाकर मेरे हव
करने आए हो! जाओ, जहां मर्ज़ी आए, ले जाओ।'

पूरो का उल्लसित मुख देखकर रशीद सब कुछ पी गय

एक सप्ताह के भीतर ही सारे गांव ने देखा कि लड़का पूरो
आंगन में अच्छा-भला खेल रहा था।

रत्तोवाल

रहीमे की बुढ़िया मां की आंखें दिन-दिन खराब होती जा र
थीं। रहीमे की एक पत्नी सात महीने की अबोध बालिका
छोड़कर मर गई थी, दूसरी पत्नी की अपनी सास से कम बन
थी। रहीमे की मां अपनी आंखों को और भी रोती थी। अभी त
वह चौके के दस काम करके चलती थी, रुई कात-कातकर उस
दरियों से ट्रंक भर लिए थे, महीन सूत कात-कातकर उस
दुतहियों और चौतहियों से घर भर दिया था। अभी तक वह अप
बुड्ढे हाथों से अनाज फटक लेती थी, आटा पीस लेती थी, कपा
बेल लेती थी, सुबह के समय लेकर दही बिलोने बैठ जाती थ
फिर भी उसकी बहू बुराइयां निकालती रहती थी। बुढ़िया सोच
थी कि जो वह आंखों से मोहताज हो गई तो उसे कोई मिट्टी
ठीकरे में भी पानी न देगा।

रहीमे की मां को यही चिन्ता दिन-रात सताती थी। एक दि
उसने पूरो से विनती करते हुए कहा कि जो वह कोई पन्द्रह दिन
लिए उसके साथ चली चले तो वह अपनी आंखों का इलाज कराक
देख ले, कौन जाने उसकी सुनवाई हो जाए।

"अम्मा! वह सयाना कहां रहता है?" पूरो ने पूछा।

"सयाना नहीं है, बेटा! एक बावली है, उसे पीरों का वरदा
है। कहते हैं कि उसके पानी से रोज़ सवेरे नमाज़ पढ़कर आंखें धो
से कुछ ही दिनों में आंखें भली-चंगी हो जाती हैं। सुना है कि कइ

की बन्द आंखें भी वहां जाकर खुल गईं। बावली की मिट्टी भी आंखों को लगाते हैं।"

"अम्मा! वह बावली है कहां?"

"रत्तोवाल गांव में है। एक साईं कहां रहता है, आए-गए मरीज़ों के लिए उसने वहां बावली के पास तम्बू लगवाए हुए हैं।"

पूरो के कानों में मानो किसी ने सलाख भोंक दी। रत्तोवाल...रत्तोवाल... छत्तोआनी के खेतों में खड़े होकर जिस रत्तोवाल को जाती हुई कच्ची सड़क को पूरो चाव से देखा करती थी, जिस सड़क पर से कोई पूरो को लेने के लिए घोड़ी पर चढ़कर आने वाला था, जिस सड़क पर से गांव के चार कहार पूरो की डोली ले जाने लगे थे!...रत्तोवाल....रत्तोवाल...

पूरो के पांवों से वह पथ मैला न था, पूरो की आंखों ने वह गांव देखा न था। पूरो को एक भूला हुआ नाम स्मरण हो आया...रामचन्द...रामचन्द...

पूरो के भीतर से एक धुआं-सा उठा, उसके मन में उलाहने उठने लगे, 'एक बार उसका मुख तो देख लूं, कैसा है। एक बार उसका गांव तो देख लूं, कैसा है...'

"अच्छा, अम्मा! मैं तुम्हारे साथ चलूंगी।" पूरो के मुख से अनायास ही निकल गया। फिर लज्जित-सी होकर पूरो उसके मुख की ओर देखने लगी। पूरो को लगा, मानो रहीमे की मां ने उसके हृदय की बात जान ली हो।

"साईं, तेरे बच्चे जिएं, तू दूधों नहाए पूतों फले।" रहीमे की मां के हृदय से आशीर्वाद निकलने लगे। कौन जाने उसके मन में यह कामना उत्पन्न हुई, क्या ही अच्छा होता जो मेरी बहू भी ऐसे ही मीठा बोल सकती!

"अम्मा! जावेद के अब्बा को तुम मना लेना, मैं नहीं कहूंगी।" पूरो ने लजाते हुए कहा।

"ले देख! वह तो मेरा बेटा है, कभी इन्कार कर सकता है! मेरी खातिर चार दिन दुख-सुख से काट लेगा।" रहीमे की मां ने

अपनाया दर्शाते हुए कहा।

पूरो भली भांति जानती थी कि रशीदा उसकी बात को कभी नहीं टालता, पर रशीदे के सामने रत्तोवाल का नाम लेना ही बस कठिन था।

उस रात पूरो के मन में परस्पर-बिरोधी विचार उत्पन्न होते रहे, वह मेरा कौन लगता है? मैं तो उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखूंगी। पराया मर्द, मुझे उसके गांव से क्या लेना...वह गांव में रहता है तो रहा करे, अम्मा अपना इलाज़ कराएगी, फिर हम लौट आएंगे।...तेरा ही मन उसके लिए उमग रहा है, उसको तो बुरे सपने की भांति कभी तेरा ध्यान भी न आया होगा...'

पूरो सोचती, उस गांव में जाकर रात पड़ते ही उसके भीतर जैसे कोई सोई हुई कब्रों को खोदेगा! उसके भीतर जैसे कोई गड़े मुर्दों को उठाएगा! इन कफनों को उतारने से क्या लाभ? वह रत्तोवाल नहीं जाएगी। वह रत्तोवाल के रास्ते से ही न गुज़रेगी।

पूरो हां या ना कुछ न कहती थी।

जावेद अपने पिता को न छोड़ता था। रशीद ने उसे साथ न भेजा। दोनों स्त्रियों को पहुंचाने के लिए रहीमे-हर के यहां का एक पुराना काम करने वाला अशरफ साथ गया। पूरो छोटे लड़के को साथ ले गई।

अशरफ अगले फट्टे पर इक्के वाले के साथ बैठ गया। सारा सामान पीछे रखकर पूरो और अम्मा आमने-सामने फट्टों पर बैठ गईं। इक्के के पहले हिचकोलों से ही पूरो का लड़का उसकी गोदी में सो गया। आगे बैठे हुए अशरफ ने पूरो के लड़के को उठा लिया। इक्का रत्तोवाल की सड़क पर चला जा रहा था।

घोड़े की टापों की आवाज़ जैसे पूरो के सिर पर हथौड़ा चला रही थी। पूरो ने अपना माथा इक्के की बांह से लगा लिया। वह ऊंघ गई।...सजी हुई डोली में चांदी के झब्बे वाला एक गावतकिया सिर के नीचे रखे हुए पूरो लेटी हुई थी। चूड़े के बोझ से उसकी बाहें कठिनाई से उठती थीं। हवा के एक झोंके से डोली का परदा ज़रा

सरक गया। उस मद्धिम से प्रकाश में उसने देखा, पूरो के हाथों पर मेंहदी खूब खिली हुई थी। कितनी खारी मेहंदी थी, पूरो की सहेलियों ने कितनी सारी थोप दी थी! ये कहार कितने बुरे हैं, न जाने कैसे चलते हैं। डोली में बैठे-बैठे पूरो की कमर दुखने लगी थी, डोली में हिचकोले भी कैसे आते हैं! पूरो के गुंदे हुए सिर से उसका पल्ला सरक गया। पूरो ने हाथ उठाकर पल्ला ठीक किया। हाथ में पहने हुए आभूषणों की छन-छन सारी डोली में गूंज उठी। पूरो का जी बैठा जा रहा था। कल से उससे कुछ खाया नहीं गया था। पूरो की मां ने मठड़ियों की एक डलिया उसकी झोली में डाल दी थी, पूरो का मन किया कि मठड़ी का एक टुकड़ा मुह में डाल ले, उसका जी ठिकाने नहीं आ रहा था...

अम्मा पूरो का कन्धा पकड़कर हिला रही थी, "ठीक दुपहरी सिर पर आ गई, एक-दो कौर तो मुंह में डाल ले।"

इक्केवाले ने इक्का खड़ा किया हुआ था। रास्ते में एक छोटे-से गांव के पास खाने-पीने के लिए वे लोग रुके थे, पूरो कांपकर जाग उठी। न कोई डोली थी, न आभूषण थे, न मेहंदी थी, न चूड़ा था। पूरो इक्के के पिछले फट्टे पर अम्मा के सामने बैठी हुई थी।

पूरो ने रास्ते के लिए घी का हाथ लगाकर परांठे बनाकर रख लिए थे। अम्मा ने वही गठड़ी खोली। अशरफ को चार परांठे दिए, इक्केवाले को दिए, आप लिए, पूरो के आगे धर दिए।

पूरो के गले से कौर नहीं उतरता था। परांठे के घी से पूरो को मिचलाहट-सी आती थी।

"थोड़ा ही रास्ता रह गया है, जल्दी से निबटा लें। रात को घोड़ी को सांस दिलाकर मुझे सवेरे ही लौटना है।" इक्केवाला कह रहा था। फिर सब सवारियां वैसे ही इक्के में बैठ गईं। पूरो ने अपना माथा इक्के की बांह से लगा लिया। पूरो ने रातभर जागकर जाने का सब सामान-असबाब बांधा था, उसे रातभर का उनींदा था।

...डोली फिर हिचकोले खाने लगी। रत्तोवाल का रास्त खत्म होने में न आता था। एकाएक तेज़ बाजों और शहनाइयों क आवाज़ बहुत ऊंची हो गई। डोली के इधर-उधर बाजे बज रहे थे। पूरो ने समझा, रत्तोवाल आ गया है। ...बाजे और ज़ोर से बजने लगे...लड़कियां गीत गा रही थीं...एक स्त्री ने उसका घूंघट उठाया...फिर किसी ने एक छोटा-सा बालक उसकी गोदी में डाल दिया। बालक अपरिचित गोदी में आकर रोने लगा, स्त्रिय खिलखिलाकर हंस रही थीं, वह बालक का शगुन कर रही थीं...

अम्मा उसके कन्धे को हिला रही थी, "आज तुझे बड़ी नींद आ रही है, देख, लड़का रो रहा है।"

पूरो फिर कंपकंपी लेकर जागी। इक्के के पिछले फट्टे पर बैठी हुई अम्मा उससे बात कर रही थी।

"हमारे पास से इतनी भारी बरात गुज़री है, मार बाजे ही बाजे बज रहे थे, आपकी आंख नहीं खुली?" अशरफ कह रहा था।

"तुझे सोती को उसने लड़का पकड़ाया, वह भी तूने पकड़ लिया, फिर भी तेरी नींद नहीं टूटी..." कहते-कहते अम्मा हंसने लगी।

इक्का रत्तोवाल के निकट पहुंच गया था। जब बावली के पास जाकर सब लोग इक्के से उतरे तो सामने ही साईं का घर दिखाई दिया। तंबुओं की जगह अब साईं ने दो-तीन कच्ची कोठड़ियां बनवा दी थीं जिनमें दूर-पार के आए हुए मुसाफिर रहते थे। बावली की मिट्टी, बावली का पानी आंखों को लगाते थे, मनोकामना पाते थे।

साईं ने इन नये मुसाफिरों को एक कोठड़ी दिलवा दी। अशरफ ने सब सामान गठड़ी-पोटली कोठड़ी में रखा और अम्मा को लेकर साईं के पास चला गया। पूरो ने कोठड़ी में पड़ी हुई चारपाई पर खेस बिछाकर लड़के को लिटा दिया। फिर वह दरवाज़े पर खड़ी होकर सामने खेतों के पार गांव के घरों की ओर

देखने लगी।

...मैं रत्तोवाल आ गई, मुझे किसी ने बुलाया नहीं, मुझे एक भी आदमी लेने न आया, किसी ने भी शहनाई न बजाई, किसी ने भी गाना न गाया, किसी ने भी हाथों में चूड़ी न पहनाई, एक भी कौड़ी मेरे हाथों में न छनकी, मेंहदी की एक पत्ती भी मेरे हाथों पर न लगी...

गांव के बाहर इस बावली पर बड़ा सन्नाटा था। पूरो का जी उड़ा जाता था। उसका मन करता था कि वह दौड़कर उस गांव में चली जाए, यहां से भाग जाए। रह-रहकर पूरो के मन में विचार उठता, कैसे लोग हैं इस गांव के! कोई उससे नहीं कहता, 'बैठ जाओ', कोई उससे नहीं कहता, 'जीती रहो!' कोई उससे नहीं कहता...

फिर पूरो कुछ संभली। पूरो को लगा, वह कुछ पागल होती जा रही है। कहीं वह पागलों की भांति गांव की गलियों में न दौड़ने लगे, कहीं वह अपने कपड़े न फाड़ डाले, कहीं वह चिल्ला-चिल्लाकर बोलने न लगे...

साईं ने अम्मा को बताया कि उन्हें वहां पूरे तेरह दिन रहना पड़ेगा। उनका नौकर अगले दिन वापस अपने गांव सक्कड़आली चला गया। आटा-दाल वे अपने साथ ले आई थीं। पूरो और अम्मा अपनी रोटी आप पकाती थीं। वैसे यदि कोई चाहे तो साईं की दरगाह से भी भोजन पा सकता था।

पूरो ने गांव की ओर मुख न किया। फिर गांव के बारे में पूरो किससे पूछती और क्या पूछती? दिन पर दिन बीतते जा रहे थे। गांव में वह जाती भी तो किस बहाने? यदि किसी चीज़ की आवश्यकता होती थी तो साईं के नौकर-चाकर वहीं ला देते थे। यह सोचकर पूरो का दिल व्याकुल हो उठता था कि वह गांव की दहलीज़ तक आकर लौट जाएगी पर गांव न देख सकेगी। पूरो के मन में आता था कि किसी न किसी तरह से वह जाकर सारा गांव देख आवे, उसका घर भी देख आवे, उसे भी देख आवे, पर उसे

कोई न जान सकें...फिर पूरो सोचती, पूरो को कैसे मालूम होगा
उसका घर कौन-सा है, वह किसी से पूछे भी तो कैसे, फिर घर
भीतर से कैसे देखेगी...फिर पूरो सोचती, उसके घर को देखकर
क्या लेना है, उसका उस घर से सम्बन्ध ही क्या है, क्यों उसके
में ऐसी बातें उठती हैं...

पूरो का जी ठिकाने न आता था। एक के बाद एक करके
बीतते जाते थे। बैठे-बैठे पूरो को एक भूला हुआ गाना याद
गया :

जये आये तये टुर चल्ले
साडे आयां दा कदर नयीं
हाय रब्बा, साडे आयां दा सबर पवी।

कितनी ही बार पूरो की आंखों में आंसू भर-भर आते,
उन्हें पी जाती। लड़के को अम्मा के पास लिटाकर वह खेतों में
आती।

पूरो सोचती, एक बार देखूं तो पहचान तो लूं।

फिर पूरो सोचती, इतने बरस हो गए हैं, कौन जाने कै
सूरत हो गई हो! अगर मेरे पास से भी गुज़र जाए, तो मैं
पहचान सकूंगी?

खेतों में किसानों से कभी-कभी पूरो पूछ लेती, "भाई! ये
किसके हैं, दो गाजरें लेनी थीं, हम तो मुसाफिर हैं।" किसान क
किसी का नाम लेते, कभी किसी का, रामचन्द का नाम कोई
लेता।

अगले दिन किसी ने सचमुच रामचन्द का नाम ले दिया।
के पांव ऐसे हो गए, मानो धरती में गड़ गए हों!...

पूरो का सिर चकराने लगा, उसे लगा, वह उसी मिट्टी
गिर पड़ेगी, वह उसी मिट्टी पर मिट्टी हो जाएगी...

पूरो उसी कीकर के नीचे खड़ी की खड़ी रह गई। उसके
में से जैसे किसी ने शक्ति खींच ली है। उसके पैर जैसे जम
बरफ के ढेले बन गए हों। उस मिट्टी ने जैसे पूरो को कस

अपनी लपेट में ले लिया हो।...

पूरो को जान पड़ा, वह खड़ी की खड़ी अनार का पेड़ बनकर उग आई थी, जिसके लाल अनारों को जब भी कोई तोड़ने लगता, वह अंगारे बनकर धरती पर गिर पड़ते, उसके लाल अनारों को जब भी रामचन्द तोड़ता, अनार के लाल दाने लहू की बूंदें बनकर उसके कुरते पर गिर पड़ते और उसे अनार के पेड़ में से एक आवाज़ सुनाई देती :

मैं बूटा उग्गी होई आं
मैं बे मुरादी मोयी हां

किसान ने काटे हुए चनों का गट्ठड़ बनाकर सिर पर धर लिया। पूरो का ध्यान टूटा। उसे याद आया कि जो राजकुमारी अनार का पौधा बनकर उगी थी, उसकी कहानी उसने छोटे होते सुनी थी। पूरो अभी तक न राजकुमारी बनी थी, न अनार का पौधा।

"मालिक आ रहा है..." कहते हुए किसान चने का गट्ठड़ लेकर कुएं की ओर चल दिया।

पूरो की आंखों से आंसू बहने लगे। रामचन्द जब पूरो के पास से गुज़रा, उसकी आंखें पूरो की ओर उठीं। पूरो का मुंह आंसुओं से भीगा हुआ था।

पूरो को न कीकर की ओट होना याद रहा, न अपने पल्ले से आंसू पोंछ लेना। शायद आंसुओं के बहने के कारण उसे रामचन्द का मुंह भी दिखाई नहीं दे रहा था।

"तुम कौन हो, बीबी? तुम्हें क्या हुआ है?" रामचन्द के पैर रुक गए।

पूरो कुछ न बोल सकी।

"तुम्हें कोई तकलीफ है, बीबी?" पूरो के कानों में फिर रामचन्द की आवाज़ आई। पूरो की जीभ जैसे किसी ने पीछे खींच ली थी, वह मूर्ति की भांति खड़ी रही। पूरो के मन में बाढ़-सी उठी, पर उसके मुंह से एक शब्द भी न निकला।

रामचन्द ठिठक गया। उसने इधर-उधर देखा। शायद वह किसी किसान को सहायता के लिए बुलाता। उसी समय पूरो के पैरों में शक्ति लौट आई और वह चुप की चुप, गुम-सुम, खेतों से बाहर चली गई।

पूरो चुपचाप आकर अपनी कोठड़ी में पड़ी रही। उसी शाम सक्कड़आली से अशरफ आ गया था। अगले दिन तड़के ही उन सबको अपने गांव लौटना था।

उस रात पूरो की आंख न लगी। 'एक शब्द भी मैंने उससे न कहा...पूछता था, तुम कौन हो, बीबी।... मैं उसे क्या बताती, मैं कौन हूं!... मेरी व्यथा को बोलकर कौन बता सकता है!... कभी सोते, उठते, बैठते उसे मेरे रोते हुए मुख का ध्यान आएगा तो वह सोचेगा कि वह कौन थी...फिर कौन जाने उसे कोई बिसरी हुई कहानी याद में आ जाए...उसकी मरी हुई पूरो उसे याद आ जाए...फिर शायद उसकी आंखों से दो-एक आंसू गिर पड़ें...!' फिर पूरो सोचती, 'यदि मैं भी उस राजकुमारी की भांति अनार का पौधा बन सकती, उसके खेतों में उग जाती, वह मेरे अनारों को तोड़ता, फिर मैं अनारों में से बोलती...न जाने ये सब किस युग की बातें हैं...आजकल तो कोई मनुष्य पौधा नहीं बनता...'

रात का पिछला पहर अभी भोर नहीं बना था कि जैसे किसी ने पूरो का हाथ पकड़कर उसे चारपाई से उठा दिया। पूरो बाहर खेतों को चली गई। रात के अंधेरे में भी पूरो ने उस जगह को पहचान लिया, उस कीकर को पहचान लिया, जहां कल सांझ को रामचन्द उसके सामने खड़ा था। झुककर पूरो ने उसी स्थान पर से उसके चरणों की धूल उठा ली और अपनी आंख बन्द करके एक चुटकी अपनी आंखों से लगा ली।

आंखों से लगे हुए पूरो के दोनों हाथ किसी ने अपने हाथों में ले लिए। पूरो ने चौंककर देखा, रामचन्द उसके सामने खड़ा हुआ था।

"क्या तू पूरो है?" रामचन्द पूछ रहा था—"सारी रात यही

एक नाम मेरे दिमाग में चक्कर लगाता रहा, सच-सच बता, तेरा नाम पूरो है?''

पूरो का हृदय कहता था, वह रामचन्द के पैरों पर गिर पड़े, वह जी भरकर रोवे और कहे कि वह पूरो है, चीख-चीखकर बताए कि वह पूरो है। वह उसी की पूरो है, जिसे लेने उसने घोड़ी पर चढ़कर जाना था, जिसके साथ उसकी भांवरें पड़नी थीं। वह वही पूरो है, जिसे उसके घर डोली चढ़कर आना था...वही पूरो है, पूरो...

पूरो की जीभ को आज भी किसी ने खींच लिया। पूरो एक भी शब्द न बोल सकी। रामचन्द के हाथों में से उसने अपने हाथ वापस ले छुड़ा लिए। पूरो वैसे की वैसी, गुम-सुम, वहां से लौट चली।

''जो तू पूरो है तो मुझे एक बार बता जा।'' रामचन्द ने पूरो के पीछे तेज़ कदम बढ़ाते हुए कहा, ''मैं सारी रात इन खेतों में घूमता रहा हूं। पता नहीं क्यों, मेरा दिल गवाही देता था, तू फिर आएगी। मेरा दिल गवाही देता है, तू पूरो है।''

''पूरो तो कब की मर चुकी है।'' न जाने कैसे पूरो के मुंह से निकल गया। उसने पीछे मुड़कर भी न देखा, वह आगे बढ़ती गई।

अम्मा ने बाबली के साईं को मिठाई का चढ़ावा चढ़ाया। अम्मा और उसके बाकी साथियों से लदा हुआ इक्का धूप चढ़ने से पहले सक्कड़आली की सड़क पर पड़ गया।

एक आग

एक-एक करके कई दिन बीत गए, दिन-दिन करके महीने, और महीना-महीना करके कई बरस बीत गए।

दूध की भरी हुई काढ़नी को जब पूरो चूल्हे पर कढ़ने के लिए रखते समय सूखे कंडे जोड़ती, और सारा दिन जलने के लिए कंडों में धीमी-धीमी आग सुलग जाती, तब पूरो को लगता कि उसकी

छाती की भीतर वाली तह में कोयले की एक चिनगारी पड़ी हुई है जिससे न जाने कितने दिनों से उसके अन्तस्तल में कुछ आग-सी सुलग रही है।

कभी पूरो सोचती कि आजकल उसका खाया-पिया उसकी छाती पर ही धरा रहता है। उसे अपने गले में कुछ अड़ा हुआ मालूम होता। दो-तीन बार बासी पानी के साथ उसने चुटकी भर-भरकर अजवायन भी फांकी थी। कभी पूरो सोचती, मेरे अन्दर गरमी हो गई है, उसने तीन-चार दिन कच्ची लस्सी के कटोरे भर-भरकर पिए। कभी पूरो सोचती थी, कौन जाने मां का जी कैसा हो। पता नहीं क्यों उसके मन में ऐसे विचार उठते थे।

इन्हीं दिनों एक दिन जब रशीद घर आया, उसका मुंह इतना उतरा हुआ था, मानो वह महीनों का रोगी हो।

रशीद ने घर में कुछ न कहा। पूरो से बातें करता रहा, जावेद से मदरसे की बातें करता रहा, छोटे लड़के के साथ हंसता-खेलता रहा। खाना खाते समय पूरो रशीद के मुख को देखती रही। उसे लगा, मानो, कौर रशीद के गले से नीचे नहीं उतर रहा है। पानी के घूंट के साथ रशीद ने कुछ कौर नीचे उतार लिए। रशीद के मन की दशा पूरो से छिपी न रह सकी।

पास-पास पड़ी हुई चारपाइयों पर लेटने के बाद पूरो ने रशीद के जी का हाल पूछा।

''आज मेरे गांव से एक आदमी आया था, हमारे अपने खेतों पर काम करता है।'' रशीद ने एक पल चुप रहकर कहा।

''छत्तोआनी से?''

''हां।''

''फिर?''

''वह कह रहा था कि हमारी कटी हुई फसल के ढेर लगे हुए थे, मनों अनाज ढेरों का ढेर पड़ा हुआ था...''

''फिर?''

''किसी ने रातोंरात आग लगा दी।''

"हैं!"

"सारी फसल में से एक दाना भी नहीं बचा।"

"किसी ने जानबूझकर लगाई?"

"शक तो ऐसा ही है।"

"ऐसा कौन था?"

"वह आदमी कह रहा था, आग की लपटों से सारा आसमान लाल हो गया था।"

"फिर अब? हमारा जो हिस्सा था सो तो था ही, वे बिचारे क्या करेंगे?" उन बिचारों से पूरो का अभिप्राय रशीद के भाई, उसके चाचा-ताउओं से था, जिनका फसल में साझा था।

रशीद चुप हो गया। पूरो भी जैसे सोच में पड़ गई। बालक तो सो गए थे, पर रशीद और पूरो की आंखों में नींद नहीं थी।

'पर दूसरे का घर फूंककर किसी को क्या मिला?' पूरो ने कई बार रह-रहकर अपने मन में सोचा। रशीद चुप रहा। पूरो देखती रही, कभी रशीद दाईं करवट लेता है, कभी बाईं करवट लेता है, फिर सीधा लेट जाता है। कभी-कभी वह अपनी आंखें मीचकर भी लेटा रहा, पर नींद उसके पास न फटकती थी। कई बार उठकर रशीद ने पानी भी पिया।

"लड़के को अलग चारपाई पर लिटा दे, मुझे आज इसके पास नींद नहीं आती।" रशीद ने कहा।

जावेद सदा अब्बा के पास सोता था और छोटे लड़के को पूरो अपने पास सुलाती थी। पहले कभी रशीद ने यह बात न कही थी। पूरो को आश्चर्य तो हुआ, पर उसने चुपचाप जावेद को उठाकर अलग चारपाई पर लिटा दिया।

फिर भी कितना ही समय बीत गया। रशीद करवटें ही बदलता रहा, पर नींद उसकी आंखों के पास न आई।

"एक उड़ती-उड़ती बात सुनी है, पता नहीं, सच है या झूठ!" रशीद ने लेटे-लेटे कहा।

"क्या?" पूरो ने चौंककर पूछा।

रशीद फिर चुप हो गया, मानो वह अपने मन में निर्णय क रहा हो कि वह बात पूरो को बतानी चाहिए या नहीं।

रशीद बड़ी देर तक चुप रहा। पूरो अपनी चारपाई से उठकर रशीद की चारपाई पर जा बैठी।

''सुना है कि गांव में एक अपरिचित जवान आया था। वह किसी से बहुत मिला-जुला नहीं। गांव के लोगों को शक है कि शायद वह...वह तेरा भाई था।''

''मेरा भाई'' पूरो मानो अनायास बोल उठी।

''कुछ कहा नहीं जा सकता। मुझे तो गांव गए भी कितने दिन हो गए हैं। वह जो आदमी आया था, वह ये सब बातें बतला रहा था।'' कहकर रशीद फिर चुप हो गया।

पूरो के सिर में जैसे चक्कर आने लगे।

'मेरा भाई?...मेरा भाई अब जवान हो गया होगा। मुझे उसकी सूरत देखे दस-बारह बरस तो हो ही गए हैं। कौन जाने अब देखने में कैसा लगता हो! उसे अचानक देख लूं तो शायद पहचानूं भी नहीं। मसें भीगने लगी होंगी। नौ-दस बरस का तो यह जावेद ही होने आया।' पूरो के मन में अनेकों विचार उठने लगे।

रशीद ने उसे केवल इतना और बताया कि पूरो-हर के पुराने मकान के सम्बन्ध में उसने किसी आदमी से पूछा था कि यह घर किसका है, पर अपने सम्बन्ध में अपने मुंह से उसने किसी को कुछ नहीं बताया। लोगों को केवल शक ही है। किसी ने अपने कानों से कुछ नहीं सुना।

क्या सचमुच वह गांव आया होगा? उसे मेरा ध्यान आया होगा, उसकी बहन, उसकी अपनी बहन, उसकी सगी मां-जाई बहन...!' पूरो के मन में उथल-पुथल होने लगी, उसकी आंखों में आंसू आ गए।

फिर उसे आग लगने का दु:ख भूल गया, जले हुए गेहूं की राख में से मां-जाए भाई-बहनों का स्नेह उभरने लगा। प्रेम की एक उज्ज्वल चिंगारी हृदय में चमकने लगी।

''कौन जाने उसने आग लगाई हो, शायद अपने भरे हुए दिल का गुबार निकालने के लिए इस प्रकार बदला लिया हो! उसकी जवान काया में नया लहू चलता होगा। कौन जाने उसे बहन के दुःख का ध्यान व्याकुल करता हो...मैं एक बार उसका मुंह देख लेती! कौन जाने मेरे भाग्य में क्या लिखा हुआ है!'' ऐसे ही पूरो सोचती रही।

फिर उसके मन में चिन्ताएं आने लगीं। एक घड़ी पहले पूरो का संबंध उसके साथ था, जिनका मनों अन्न जलकर राख हो गया था, और एक घड़ी बाद पूरो का अपनत्व उसके साथ हो गया था, जिसने शायद उस अन्न को जलाकर राख कर दिया था।

'आग लगाने वाला कहीं वह ही न हो!...कहीं आग किसी और ने लगाई हो और शक-शुबहे में वह पकड़ा जाए!...' पूरो की चिन्ता बढ़ने लगी। कुछ भी हो, वह अपने भाई की कुशल चाहती थी। वह सोचती थी, कौन जाने उसके भाई के हृदय में दुःख और प्रेम की कोई आग जल रही हो, उसी जलती आग में से उसने एक चिनगारी खेतों को लगा दी हो। शायद उसके भाई को यह भी पता न होगा कि रशीद छत्तोआनी में नहीं रहता।

पूरो निढाल होकर अपनी चारपाई पर लेट गई। विचार उसके मन में डूबते-उतराते रहे।

जब पूरो की आंख लगी—उसके सामने आग ही आग लगी हुई थी, नीचे धरती पर घास के तिनकों से लेकर पीपल की सी ऊंचाई तक सब कुछ जल रहा था। फिर पूरो ने सपने में देखा, एक सुन्दर नवयुवक आग की ऊंची उठती हुई लपटों के पास बैठा अपने हाथ ताप रहा है।

पूरो चौंककर जाग उठी। पूरो का जोड़-जोड़ दुख रहा था।

पूरो को लगा, इतने दिनों से इसकी छाती में जो धुकधुकी-सी लगी हुई थी, जिसके लिए वह कभी अजवायन फांकती थी, कभी कच्ची लस्सी पीती थी, आज उसमें से लपटें निकल-निकलकर उसके शरीर को जला रही थीं। पर पूरो की समझ में नहीं आता था

कि इस आग से उसके शरीर को सेंक लग रहा था या कि उसके भाई के स्नेह की ज्योति उद्दीप्त हो रही थी।

१९४७

जिस तरह खरबूज़ा फांक-फांक हो जाता है, उसी प्रकार शहरों में, गांवों में मनुष्यों से मनुष्य फटते जाते थे।

जैसे हवा के साथ उड़-उड़कर धूल आती है, वैसे ही आसपास के कस्बों से खबरें आती थीं। आदमी पर आदमी मारे जा रहे हैं, घर के घर जल रहे हैं। पड़ोसी को पड़ोसी मार रहा है। राह चलते को राह चलता तलवार के घाट उतार जाता है। लोगों की जान सुरक्षित नहीं थी, उनका माल सुरक्षित नहीं था।

पूरो सब कुछ आंखों से देखती थी, कानों से सुनती थी। उसके अपने गांव में और आसपास के गांवों में भी लोग लोहा इकट्ठा कर रहे थे, लोहे पर शान धर रहे थे, अपने घरों की छतों पर ईंटें इकट्ठी कर रहे थे, भाले और बरछियां संभाल-संभालकर अपनी कोठड़ियों में रख रहे थे।

''यहां हमारा अपना राज होगा, यहां हमारी अपनी हकूमत होगी'', हरएक यही कहता था। ''यहां हम हिन्दू का बीज भी रहने नहीं देंगे'', लोग चौराहों पर खड़े हो-होकर कहते थे।

'कभी ऐसा होते भी सुना है!' पूरो बार-बार सोचती। 'भला इतनी सृष्टि जाएगी कहां?' पूरो रह-रहकर सोचती।

''लोगों को झूठमूठ एक जनून आता है'', पूरो कहती, ''चार दिनों की आंधी है, आएगी और चली जाएगी।''

पर लोग थे कि मानो पागल हो गए थे; बस, बुरी-बुरी बातें ही करते थे। कहीं से भी भली खबर न आती थी। फिर पूरो ने सुना, शहरों में गलियां लहू से भर गई है, बाज़ार के बाज़ार मुर्दों से पट गए हैं, सडती हुई लाशों से बदबू उठने लगी है, उन्हें कोई

जलाता-फूंकता नहीं, कोई उन्हें दबाता-गाड़ता नहीं। लोग कह रहे थे, इतने मुर्दों की सड़ांध से सारे देश में बीमारी फैल जाएगी।

फिर उस वर्ष की पन्द्रह अगस्त बीत गई। गांव में ढोल बजे, चांद और तारों वाले हरे रंग के झंडे लगे। प्रतिदिन मस्जिद में लोग इकट्ठे होते थे। गांव के हिन्दुओं के मुख पर मानो किसी ने हल्दी फेर दी थी।

फिर पूरो ने सुना, कुछ शहरों में सीमाएं बना दी गई थीं। इनके एक ओर मुसलमान रह गए थे, दूसरी ओर सारे हिन्दू चले गए थे। फिर पूरो ने सुना, उधर दूसरी ओर से मुसलमान मरते-कटते चले आ रहे थे, बहुत-से वहीं मर गए थे, बहुत-से रास्ते में खत्म हो गए थे, बहुत-से इधर पहुंचकर मर रहे थे।

पूरो के कान सुन-सुनकर जैसे फट चले हों!—पूरो ने सुना, मुसलमान हिन्दुओं की लड़कियां और हिन्दू मुसलमानों की लड़कियों को उठाकर ले गए हैं। कइयों ने उन्हें अपने घरों में डाल दिया है, कइयों ने उन्हें जान से मार डाला है, और कइयों को वे नंगा करके गलियों और बाज़ारों में घुमा रहे हैं।

गुजरात ज़िले के उन गांवों में, जो पूरो के गांव के आसपास लगे हुए थे, सबसे पीछे उपद्रव हुए। पूरो के अपने गांव वाले, उसकी अपनी बिरादरी वाले, पूरो के अपने रशीद को छोड़कर, रशीद के सारे सम्बन्धी-कुटुम्बी भी, वहशी बने फिरते थे। पूरो को साहस न होता था, और न रशीद के बस की बात थी कि किसी को कुछ समझावें-बुझावें।

उनके आसपास के गांवों के हिन्दू भागने लगे। उनकी गायें अपने खूंटों से बंधी रह गईं, उनकी भैंसे भां-भां डकराने लगीं—उनके भरेभराये घर पीछे छूट गए, उनके खेत मालिकों के मुंह ताकते रहे। वे रातोंरात भागते, वे गांवों की सीमा पर मारे जाते, वे बीसियों कोस चलते रहने के बाद मरे हुए मिलते।

पूरो के गांव के सारे हिन्दू अपनी एक बड़ी हवेली में चले गए थे। यदि कोई खिड़की या दरवाज़ा खोलकर बाहर आ जाता तो

तुरन्त मृत्यु उसे अपने झपेटे में ले लेती थी। कहते थे कि हवेली उन्होंने अनाज इकट्ठा किया हुआ था। कोई हिन्दू बाहर देख नहीं था। कोई हिन्दू स्त्री बाहर झांकती नहीं थी।

पूरो के गांव में केवल मुसलमान रह गए थे। गांव में हिन पशुओं की भांति हवेली में फंसे हुए थे। एक दिन उसके गांव वाल ने मिलकर हवेली पर हमला किया। उन्होंने निश्चय किया था कि वह हवेली वालों का नाम मिटा देंगे। उन्होंने बन्द घरों के ताले तो डाले, अलग-अलग घरों के मालिक बन बैठे। यदि कभ रात-बिरात कोई हवेली से नीचे उतरता, अगले दिन पूरो गांव उसकी लाश पड़ी देख लेती थी।

एक दिन उन्होंने न जाने किस तरह हवेली के दरवाज़ों औ खिड़कियों पर तेल डाला, और तेल से भीगे हुए दरवाज़ों औ खिड़कियों में आग भी लगा ली थी, जब हिन्दू मिलिटरी के ट्र उनके गांव में पहुंच गए।

हवेली के भीतर से आग की लपटों जितनी ऊंची चीखें भ निकल रही थीं जबकि मिलिटरी ने आग बुझाई और भीतर आदमी निकाले। उन घबराए हुए लोगों को उन्होंने लारियों बिठा दिया। आधे जले हुए तीन आदमी भी निकाले गए, जिनक शरीर से चरबी बह रही थी, जिनका मांस जलकर हड्डियों अलग-अलग लटक गया था। कोहनियों और घुटनों पर से जिनक पिंजर बाहर को निकल आया था। लोगों के लारियों में बैठते-बैठ उन तीनों ने जान तोड़ दी। उन तीनों की लाशों को वहीं भूमि प फेंककर लारियां चल दीं। उनके घर वाले चीखते-चिल्लाते र गए, पर मिलिटरी के पास उन्हें जलाने-फूंकने का समय नहीं था

पूरो का गांव खाली हो गया था। परायी कौम का को आदमी भी बाकी नहीं रह गया था। केवल तीन लाशें हवेली बाहर पड़ी हुई थीं, जिनके पिंजर पर बचे हुए मांस को दिन में ह गांव के कुत्तों और कौवों ने नोच लिया था।

पूरो की आंखों में जैसे किसी ने सीसे के कंकड़ डाल दिए हो

एक दिन पूरो ने दस-बारह मनचले नवयुवकों को एक नंगी जवान लड़की को अपने आगे करके, दोनों हाथों से ढोल-ढमके बजाते अपने गांव के पास से गुज़रते देखा। न जाने वे किस गांव से आए थे और किस गांव को चले गए।

पूरो को लगता, मानो इस संसार में जीना, दूभर हो गया हो, मानो इस युग में लड़की का जन्म लेना ही पाप हो।

उसी दिन संध्या के समय पूरो को गन्ने के खेत में छिपी हुई एक लड़की दीख पड़ी, जिसे रात के घोर अन्धकार में वह अपने घर ले आई।

उस लड़की ने पूरो को बताया कि पास के गांव में एक कैम्प खुला हुआ था, जहां गांव के हिन्दू इकट्ठे हो गए थे और प्रतीक्षा कर रहे थे कि मिलिटरी उन्हें यहां से निकालकर कब दूसरी ओर हिन्दुस्तान ले जाएगी। इस ओर की फौज कैम्प की रखवाली करती थी। पर प्रतिदिन रात को कुछ मुसलमान चोरी-छिपे आकर कैम्प की जवान लड़कियों को उठाकर ले जाते थे और अगले दिन तड़के ही उन्हें वापस छोड़ जाते थे।

उस लड़की ने पूरो को बताया कि पूरी नौ रातें हो गई थीं, उसे रोज रात को नये-नये लोगों के घरों में जाना पड़ा था। पिछली रात वह किसी प्रकार अपने ले जाने वाले को धोखा देकर भाग गई थी। दौड़ते-दौड़ते वह इस गांव में आ पहुंची थी। जब सुबह के समय उजाला होने लगा तब वह निश्चय न कर सकी कि किधर जाए। उसने दिन का सारा समय ईख के खेत में लुके-छिपे पड़े रहकर बिताया...

पूरो यह सब सुन-सुनकर विक्षिप्त-सी हो गई थी। उससे और न सुना जाता था। पूरो को जैसे इन बातों का विश्वास न होता था। पूरो ने उस लड़की को अपने घर की पिछली कोठरी में रख लिया। वहां पूरो के घर का गेहूं पड़ा था, भैंस का खली-भूसा पड़ा हुआ था।

दूसरे दिन दो आदमी दौड़े-दौड़े आए। उन्होंने सारे गांव

वालों से पूछा कि किसी ने एक लड़की देखी है? वे गांव वाल
आंगनों में भी झांक-झांकर देख गए, पर लड़की का कुछ पत
चला।

पूरो के मन में कई प्रकार के प्रश्न उठते, पर वह उनका
उत्तर न सोच सकती। उसे पता नहीं चलता था कि अब इस ध
पर, जोकि मनुष्य के लहू से लथपथ हो गई थी, पहले की भांति
की सुनहरी बालियां उत्पन्न होंगी या नहीं...इस धरती पर, जि
खेतों में मुर्दे पड़े सड़ रहे हैं, अब भी पहले की भांति मकई के भु
में से सुगन्ध निकलेगी या नहीं...क्या ये स्त्रियां इन पुरुषों के
अब भी सन्तान उत्पन्न करेंगी, जिन पुरुषों ने इन स्त्रियों
अपनी बहनों के साथ ऐसा अत्याचार किया था?...

हिन्दुस्तान जाता हुआ एक काफिला पूरो के गांव के
रुका। पुरुष और स्त्रियां, झुंड के झुंड, पैदल चलते
बैलगाड़ियों में उन्होंने बच्चों को भर लिया था। कुछ सिप
काफिले के आगे थे और कुछ पीछे। यात्रियों की आंखें भारी हो
थीं। रास्ते की धूल दुर्दैव की भांति उनके मुंह-सिर पर मंडरा
अब वहीं जम गई थी।

पूरो के गांव पहुंचते-पहुंचते काफिले को रात पड़ गई।
वहीं रुकना पड़ा।

पूरो का चित्त व्याकुल था। उसे रह-रहकर एक ही वि
आता कि वह सड़क रत्तोवाल से आती है, इस काफिले में अव
उसका रामचन्द होगा...एक अन्तिम भेंट...बस,
बार...अन्तिम बार...उसके बाद वह इस देश में ही
रहेगा...उसके बाद फिर कभी भी वह उसका कुशल न
सकेगी...उसके बाद फिर कभी भी उसके गांव की हवा भी इस
न आएगी...

काफिले वाले अपने बचे-खुचे गहने और रुपये देकर र
के गांवों के लोगों से अनाज मोल लेते थे। गांव के कुछ स्त्री-पु
जाकर उनसे सौदा कर लेते थे और पहले वाले सिपाहियों

देख-रेख में अपना मकई-बाजरा सोने के भाव बेच देते थे। इसी बहाने जाकर पूरो ने काफिले पर एक नज़र मारी...

पूरो ने काफिले में बैठे हुए रामचन्द को देखा। रामचन्द ने रत्तोवाल के खेतों में खड़ी हुई आंसुओं से भीगे मुंह वाली पूरो को पहचाना।

रत्तोबाल के खेतों में पूरो का मुंह उसके डूबते हुए साहस ने बंद कर दिया था, आज उसका मुंह पास खड़े हुए पहरे के सिपाहियों ने बन्द किया हुआ था। पूरो कुछ कह न सकी।

"तुम्हें अनाज-दाना कुछ चाहिए?" उसने रामचन्द की ओर मुंह करके कहा।

"हां", रामचन्द की आंखें पूरो के मुख पर से न हटती थीं, शायद अब भी वह उसे पहचानने की चेष्टा कर रहा था।

"अच्छा, रुपये तैयार रखना, मैं रात को पहुंचा जाऊंगी।" पास खड़े हुए सिपाही की ओर देखकर पूरो ने फिर रामचन्द की ओर देखा और फिर लौट आई।

पूरो ने रशीद से कहा कि उसे घर में छिपी हुई लड़की को काफिले में पहुंचाना है और वह आटे और मिट्टी के पुरवे में रखे हुए घी को कपड़े में बांधकर और लड़की को साथ लेकर रात के अंधेरे में सोए हुए काफिले की ओर चल दी।

दिन-दिन भर चलने से लोग थके हुए पड़े थे। हर समय का भय चाहे चमगादड़ों की तरह उनके सिर पर मंडरा रहा था, पर फिर भी वे घोड़े बेचकर सोए हुए थे।

'मैं रात को पहुंचा जाऊंगी।' रामचन्द के कानों में पूरो की आवाज़ शाम से ही गूंज रही थी। रामचन्द रात की निस्तब्धता में किसी के पैरों की आहट ले रहा था।

सिपाही घूमकर पहरा दे रहे थे। पूरो पंजों पर चलकर काफिले में जा पहुंची।

सिर से गठरी उतारकर उसने रामचन्द के आगे रख दी, और लड़की से बैठ जाने को कहा।

"तू पूरो ही है न?" आज भी रामचन्द ने वही रत्तोवा
खेतों वाला प्रश्न किया।

"अब भी पूछना बाकी है?" पूरो ने उलाहने से कहा। अ
जीवन में रामचन्द को उसका यह पहला और अन्तिम उला
था। रामचन्द ने सिर झुका लिया।

"मेरे माता-पिता की कोई खबर?" पूरो ने एक गहरा श्
लेकर पूछा।

"वह तो जब के ब्याह करके गए हैं, लौटे ही नहीं, पर.
रामचन्द कहते-कहते रुक गया।

"ब्याह? किसका ब्याह?" पूरो ने पूछा।

"तेरे खो जाने के बाद उन्होंने एक रात चुपचाप तेरी छो
बहन के फेरे मुझसे कर दिए और तेरे भाई के साथ मेरी बहन
फेरे हो गए। तब से वे गांव नहीं लौटे हैं। आजकल सियाम ही
पर..." रामचन्द कहता-कहता रुक गया।

"मेरी बहन...फिर तो वह भी काफिले में होगी?" पूरो
लिए रामचन्द के साथ उसकी बहन के ब्याह की बात बिलकुल
थी।

"नहीं, पिछले दिनों तेरा भाई आया था, वह अपनी औ
को मायके छोड़ गया था और बहन को अपने साथ ले गया था।
वह यहां होती तो वह भी...।" रामचन्द की आंखों में आ
छलछला आए।

"वह भी...क्या हुआ किसे?..." पुरो की समझ में न आ
था।

"पता नहीं लगा, किस समय मेरी बहन को उठाकर ले गए
जब हम घर से निकले, वह साथ थी। मैं बुढ़िया मां को पीठ
उठाए काफिले में आया हूं तब तक वह मेरे पीछे-पीछे चली
रही थी, पर अब काफिले में नहीं है..." रामचन्द ने गले से जोर
निकलने की चेष्टा करते हुए स्वर को रोक-रोककर कहा। उस
रुलाई आ रही थी, पर उसने अपनी पगड़ी को अपने मुंह में डा

लिया। "मेरी मां ने पीट-पीटकर अपने शरीर को नीला कर लिया है।" रामचन्द ने कहा।

पूरो की अंतड़ियों में एक ऐंठन-सी पड़ने लगी।

"कोशिश करना, कुछ पता लग जावे। न जाने जीती है या मर गई!" रामचन्द ने फिर से कहा। अंतड़ियों में उठती हुई पीड़ा के कारण पूरो कुछ बोल न सकी।

"उसका नाम लाजो है?" पूरो को याद आया। अपनी सगाई के समय उसने अपने भाई की मंगेतर का नाम सुना था।

"हां, उसकी बांह पर भी उसका नाम गुदा हुआ है।" रामचन्द ने बताया। सिपाही घूम-घूमकर पहरा दे रहे थे। सोए हुए लोगों के बीच में बैठे हुए रामचन्द और पूरो धीरे-धीरे बातें कर रहे थे।

"इस बेचारी को मैं तुम्हें सौंपने आई हूं। इसे अपने काफिले में ले जाओ। हिन्दुस्तान जाकर पता कर लेना, जो इसके मां-बाप मिल गए तो..." पूरो ने लड़की की बांह रामचन्द के हाथ में पकड़ा दी।

"मेरा भाई यहां आया था, चाहती थी, उसे एक बार देख लेती..." पूरो ने अपनी कामना प्रकट करते हुए कहा।

"पिछले दिनों...जब तुम्हारे छत्तोआनी वाले खेतों में आग लगी थी, याद है?..." रामचन्द कह रहा था।

"आग?...हां, आग लगी थी। क्या यह बात सच है कि मेरे भाई ने ही आग लगाई थी?" पूरो को उस दिन ध्यान आ गया, जब रशीद ने एक अफवाह सुनाई थी।

"हां, उसी ने आग लगाई थी। तेरा तो उसे पता मालूम नहीं था कि तू कहां रहती है। गुस्से में आकर उसने रशीद के खेत जला डाले।"

पूरो को रोमांच हो आया। उसका भाई अब जवान हो गया था, उसके हृदय में बदले की ज्वाला धधक रही थी, उसके दिल में बहन की याद थी। साथ ही उसे उस दुर्घटना की याद आई, उसके

भाई की स्त्री गुम हो गई थी, किसी ने जबरदस्ती उठा लिया था,
जाने वह किस हाल में थी, वह...उसके रामचन्द की बहन...

"मुझे यहां सक्कड़आली के पते से चिट्ठी लिखना, अप
पता भी लिखना, जो लाजो का कुछ पता लगा तो मैं लि
भेजूंगी..." पूरो ने कहा।

रात का अंधेरा हल्का होता जा रहा था। सिपाही काफि
वालों को जगा रहे थे। काफिले को आगे बढ़ना था। पूरो उठ ख
हुई।

पूरो ने रामचन्द को हाथ जोड़े। वह कुछ बोल न सकी

पूरो ने काफिले से बाहर पांव धरा ही था कि एक सिपाही
उस पर लाठी तान ली, "तू कौन है? कहां चली है?"

"मैं अनाज बेचने आई थी।"

"कितने का बेचा है? पैसे दिखा।" सिपाही ने चिल्लाक
कहा।

पूरो ने चादर में हाथ डालकर अपनी चांदी की बांक उत
ली और सिपाही को दिखाकर तेज़ कदमों से गांव को लौट गइ

सिपाही ने शायद यह न सोचा कि हिन्दू चांदी के आभूष
प्रायः कम ही पहनते हैं, इस औरत को अनाज के बदले चांदी क
बांक कहां से मिल गई!

पूरो की भाभी

रात को चारपाई पर पड़े-पड़े पूरो छत के काले शहतीरों क
देखती रहती। पूरो का मन उन लोगों की बन्द कोठरियों के चक्क
लगाता रहता जिनके भीतर लोगों ने औरों की लड़कियों, बहन
और स्त्रियों को ज़बरदस्ती डाल रखा था। उन्हीं में एक लाज
होगी। रामचन्द की बहन, उसकी अपनी भाभी! लाजो क
अनदेखा मुख पूरो की आंखों के आगे आ जाता था, टूटे हुए प
जैसा मुंह, झड़े हुए पंख जैसा चेहरा!

पूरो सोचती थी, लाजो ब्याही हुई है, शायद उसके कोई बाल-बच्चा भी हो। उसके दिल पर न जाने क्या-क्या बीता होगा, उसके शरीर पर क्या गुज़री होगी! न जाने वह इस समय कहां है! मैं उसे कैसे खोजूं? मैं उसे कैसे पहचान सकती हूं? उस दिन ईख में छिपी हुई वह लड़की लाजो ही निकल आती, मैं उसे काफिले में मिला आती...मैं उसे रामचन्द के हवाले कर आती...

पूरो ने सब बात रशीद को बताई और उसके पांव पर गिर पड़ी।

''जैसे भी हो, मुझपर दया करो। मैंने सारी उमर तुमसे कुछ नहीं मांगा। मुझे लाजो का पता ला दो, जैसे भी हो...'' पूरो की आंखों के आंसू नहीं रुकते थे। रशीद ने पूरो से प्रतिज्ञा की कि वह अपनी ओर से कोई कसर न होने देगा।

रशीद बहुत सोचने के बाद इसी निश्चय पर पहुंचा कि हो न हो, लाजो है रत्तोवाल में ही। वह घर से अपने भाई के साथ निकली, पर काफिले में मिली नहीं। काफिले में इकट्ठे होने वाले लोगों की आपाधापी में ही वह किसी के हाथ पड़ गई होगी।

रशीद ने रत्तोवाल के दो चक्कर लगाए, पर वह लोगों के मकानों में कैसे झांक सकता था! उसने गांव की कितनी ही दुकानों से सौदा-सुलुफ खरीदा, पर उसे लाजो का कोई सुराग न लगा। इतना उसने अवश्य सुन लिया था कि गांव के कुछ लड़कों ने जाते हुए काफिले में से दो-चार लड़कियों को उठा लिया था। रशीद को पूरा विश्वास था कि लाजो भी उन्हीं में है।

उस गांव वाले रशीद से परिचित नहीं थे, न ही उस गांव में रशीद का कोई संबंधी रहता था। वह किस के पास चार दिन रहता, किस से वह गांव के हाल-चाल लेता?

पूरो ने रशीद के साथ एक चाल निकाली। बावली वाले साईं को वे जानते थे। वे दोनों बच्चों को लेकर साईं की एक कोठरी में जा टिके। वैसे भी दिन-रात की चिन्ता के कारण पूरो की आंखें घुटी-सी रहने लगी थीं। पूरो रोज़ सवेरे नमाज़ पढ़कर बावली के

जल से अपनी आंखें धोती, साईं को मिठाई चढ़ाती और दिन में को
खेसों की गठरी बांधकर गांव में बेचने चली जाती।

उस समय गांव के मर्द खेतों पर होते, गांव की स्त्रियां घरों
अपने गृहस्थी के काम-काज में लगी होतीं। पूरो हर घर में जाक
पूछती। पूरो खेसों के दाम इतने अधिक बताती थी कि उसका सौद
कठिनाई से पटता था। वैसे भी गांवों में लोगों के पास अपनी ह
बनाई हुई दरियां और खेस बहुतेरे होते हैं, फिर उन्हें लूटमार से भ
बहुत कुछ मिल गया था। पूरो से खरीदने की किसी को
आवश्यकता न थी, पर पूरो ढीठों की भांति उनके आंगनों में जा
बैठती, भीतर-बाहर झांकती, स्त्रियों को बातों में लगा लेती, गांव
की लूटमार की बातें छेड़ देती, उनसे हंस-हंसकर पूछती कि
किसके हिस्से क्या-क्या आया था। फिर हिन्दुओं के छोड़े हुए
मकानों की बात छेड़ देती। पूरो रामचन्द का घर पहचानती न थी,
पर गांव वालों से बातचीत करके उसने रामचन्द के मकान का पता
लगा लिया था। रशीद और पूरो को शक था कि हो न हो, जिसने
लाजो को उठाया है, उसने शायद लाजो के मकान को भी संभाल
लिया है। पूरो ने उस मकान का भी एक-आध फेरा लगाया, पर हर
बार एक बुढ़िया उसे बाहर की ड्योढ़ी से ही लौटा देती थी, कह
देती थी कि हमें कुछ नहीं लेना है।

जैसे कोई किसी के घर में ज़बरदस्ती घुसता है, वैसे ही एक
दिन पूरो भी उस मकान के आंगन में चली गई।

"अम्मा, तुम लेना कुछ नहीं, पर देख तो लो। मैं तुमसे देखने
के दाम तो नहीं मांगती।" और पूरो ने खेसों की गठरी धरती पर
धरकर खेस इधर-उधर बखेर दिए। आंगन में उस बुढ़िया के
अतिरिक्त और कोई नहीं था।

"अल्ला खैर करे! मुझे एक घूंट पानी पिला दो, सवेरे से
प्यासी हूं।" पूरो ने साहस करके बुढ़िया से कहा।

"अरे पानी छोड़ तू लस्सी पी ले, पर जो तू चादरें और खेस
बेचना चाहती है तो किसी शहर जा। वहां न लोग सूत कातते हैं, न

कपड़ा बुनते हैं। गांवों में किसके पास खेसों का घाटा है!'' बुढ़िया ने पूरो को सलाह दी, और भीतर कोठरी की ओर मुख करके उसने आवाज़ दी, ''ओ नेकबख्त, एक कटोरा लस्सी तो भरके ले आ।''

पूरो का जी धड़कने लगा। भीतर से आने वाली लड़की का चेहरा सचमुच टूटे हुए पत्ते की भांति था, झड़े हुए पंख की तरह था। पूरो का माथा ठनका, हो न हो, यही लाजो है।

जब तक पूरो को लाजो के किसी जगह होने का शक नहीं पड़ा था, तब तक उसके मन में एक लगन थी किं कहीं लाजो दीख जाए। अब उसे शक पड़ गया था कि लाजो उसी घर में है, पर अब उसकी समझ में न आता था कि अपनी शंका का समाधान कैसे करे।

''यह तुम्हारी लड़की ठीक तो है?'' पूरो ने बुढ़िया से बड़ी सहानुभूति से कहा, और लड़की के हाथ से लस्सी का कटोरा ले लिया।

''ठीक ही है...ऐसे ही कुछ...'' बुढ़िया ने बात आई-गई कर दी।

''थोड़ा नमक देना, लस्सी में मिला लूं।'' पूरो ने लस्सी का एक घूंट भरकर कटोरा हाथ में लिए रखा।

लड़की ने चुपचाप नमक लाकर पूरो के आगे रख दिया। उसके हाथ से नमक लेते समय पूरो ने उसकी एक उंगली को दबाया। नवयुवती ने ज़रा चौंककर पूरो की ओर देखा, पर न तो उसके होंठों पर हंसी की रेखा आई, न उसके मुंह से कोई शब्द ही निकला। लड़की ईख के छिलके की भांति पेरी हुई दीख पड़ती थी।

पूरो को और भी विश्वास हो गया कि यह लड़की लाजो हो या न हो, पर कोई ज़बरदस्ती भगाई हुई लड़की अवश्य है। घर के सम्बन्ध में पूरो को पता लग गया था कि यह रामचन्द का घर था। और पूरो को यह भी पक्का विश्वास होता जाता था कि हो न हो, यही लड़की लाजो है।

लस्सी पीकर कटोरा धरती पर रखते हुए पूरो ने उस युवती की बांह पकड़ ली।

''इधर आ, मैं तेरी नाड़ी देखूं। रंग तो तेरा हल्दी जैसा हो रहा है।'' कहते-कहते पूरो ने एक हाथ से उसकी बांह पर से कुरता जरा पीछे को हटा दिया। नवयुवती की बांह पर हिन्दी में उसका नाम गुदा हुआ था, 'लाजो'। फिर भी वह कुछ न बोली-चाली। उसके होंठों पर पूस-माघ के कोहरे की भांति चुप्पी जमी हुई थी।

''कोई गंडा बांध दे न! लड़की घर से परच जाए। लड़के से भी कुछ नहीं बोलती-चालती।'' बुढ़िया ने उदास मुख से कहा।

पूरो को अपना-आप संभालना कठिन हो रहा था, फिर भी उसने जल्दी से उत्तर दिया, ''मेरे पास जैसा जन्तर है, उससे यह कुछ ही दिनों में मकई के दाने की भांति खिल उठेगी।''

''तू जो मांगेगी, तुझे दूंगी, मुझे वह जन्तर ला दे।'' बुढ़िया ने पूरो की चादर पकड़ ली।

''यह कौन बड़ी बात है, मैं कल ही ले आऊंगी। अल्ला ने चाहा तो...'' कहते-कहते पूरो ने खेसों की गठरी बांध ली। नवयुवती गूंगे-बहरे बुत की भांति उसकी ओर देख रही थी।

खेसों की गठरी के भार से आज पूरो की कमर टूटती जा रही थी। बड़ी कठिनाई से पूरो अपनी बावली वाली कोठरी में पहुंची।

''अब आगे तू जाने, तेरा काम जाने।'' पूरो ने रशीद को सारी बात बताकर कहा।

''कोई ऐसा ब्योंत बने...'' रशीद सोचने लगा।

''जैसे मुझे घोड़ी पर उठा लाया था, वैसे ही अब भी हिम्मत कर...'' पूरो ने रशीद के एक चुटकी ली और हंस पड़ी।

फिर पूरो और रशीद ने कई युक्तियां सोचीं, पर कोई भी उन्हें जंचती नहीं थी। रशीद कहता था कि यहां से उसे भगाकर ले जाना तो कठिन नहीं है, पर उसे आगे कैसे पहुंचाएंगे?

पूरो के मन में एक विचार आया जो अब तक कभी न आया था—मेरे माता-पिता ने मुझे अपनी बेटी को तो वापस कबूल नहीं

किया, क्या अब अपनी बहू को स्वीकार कर लेंगे? उन्होंने यदि वापस लेने से इनकार कर दिया, तब क्या होगा?...

रशीद ने पूरो को बताया कि उनकी सरकार की ओर से सूचनाएं निकली हैं कि ज़बरदस्ती ले जाई गई लड़कियों को खोज-खोजकर लौटा दो, कयोंकि उनके बदले में दूसरी ओर से इसी प्रकार खोजी हुई लड़कियां मिलेंगी। लड़कियों के माता-पिता उन्हें वापस ले लेंगे।

पूरो के हृदय में एक कसक-सी उठी, उसकी बार दुनिया के सब धर्म उसके रास्ते में कांटे बनकर बिछ गए थे, उसके माता-पिता ने उसे स्वीकार नहीं किया, उसके ससुराल वालों ने उसे स्वीकार नहीं किया। आज सब मज़हबों के मान टूट चुके थे, आज...

अपने विषय में सोचना पूरो ने छोड़ दिया। वह लाजो के संबंध में सोचने लगी।

वह रात पूरो ने तारे गिन-गिनकर काटी। सवेरा होते ही वह इस टोह में लग गई कि लाजो के घर वाली बुढ़िया अपने बेटे के लिए रोटी लेकर खेतों को कब जाती है। उसने फिर दो-एक कोरे खेस सिर पर रखे और कपड़े के टुकड़े में थोड़ी-सी राख बांधकर चल दी।

लाजो के घर के भिड़े हुए दरवाज़े को अपने हाथों से खोलते समय पूरो ने सारे पीर-फकीरों का ध्यान किया। एक समय से भूले हुए देवी-देवता उसे स्मरण हो आए। पहले प्रायः रब और खुदा का नाम लेते समय पूरो कहा करती थी कि रब उसका सौतेला पिता था और खुदा की वह सौतेली बेटी थी, कोई भी रब या खुदा उसके दुःख-दर्द की परवाह न करता था; पर आज पूरो के हृदय पर एक प्रकार का भय छा गया। पूरो ने झिझकते हुए किसी भी रब-रहीम से प्रार्थना की कि किसी प्रकार लाजो से आज उसकी भेंट अकेले में हो जाए!...

पूरो को लाजो के घर पहुंचते-पहुंचते भी दोपहरी का समय

हो गया। बुढ़िया अपने बेटे को रोटी देने गई हुई थी। लाजो अकेली ही आंगन में बिना बिछावन की खाट पर पड़ी थी।

''अम्मा कहां है?'' पूरो ने आंगन में पैर धरते ही पूछा।

''खेत गई है।'' लाजो ने कल की खेस बेचने वाली की ओर देखकर कहा। लाजो के हृदय में खेस वाली की ओर नया जागा हुआ आकर्षण उसके मुख पर स्पष्ट दीख पड़ रहा था। लाजो उठकर खाट पर बैठ गई।

एक क्षण में ही पूरो को लाजो की मुखाकृति में अपनी मां, अपनी बहन और अपनी भाभी के मुख दीख पड़े। वह उसके गले से चिपट गई।

पूरो को लगा कि वह रो उठेगी, इतने जोर से, कि उसका रोना दीवारों को फाड़ देगा, उसका रोना खेतों को पार कर जाएगा, उसका रोना गांवों को लांघ जाएगा, उसका रोना शहर से भी आगे निकल जाएगा, उसका रोना...

पूरो ने अपने रोने को गले के बाहर न निकलने दिया।

''तू लाजो है...मेरी भाभी...'' पूरो ने अपने हृदय में उठते हुए तूफान को दबाकर कहा।

''तू पूरो है?'' लाजो ने ज़रा उसकी छाती से हटकर उसका मुख देखा। पर लाजो ने पूरो को पहले कभी न देखा था जो अब पहचानती, फिर भी लाजो को पूरो का मुख बिलकुल उसके भाई जैसा ही लगा, अपने पति जैसा...लाजो के हृदय में एक लाज-सी उत्पन्न हुई, मानो वह अपने पति के मुख की ओर आंख उठाकर न देख सकती हो...लाजो पूरो की गोद में गिर पड़ी।

लाजो के अन्तस्तल में उस समय जो कुछ बीत रहा था, शायद वह पूरो की नसों में प्रवेश करता जा रहा था। पूरो को कुछ भी पूछने की आवश्यकता न थी। पूरो ने लाजो को कलेजे से लगाए रखा।

''कोई आ जाएगा लाजो! मेरी बात सुन।'' पूरो को बीतते समय का ध्यान आया। लाजो की सिसकियां न रुकती थीं, उसकी

सांस ठिकाने न आती थी।

"वह कब तक लौट आती है?" पूरो ने पूछा।

"मुझे कुछ पता नहीं। मुझे अपने पास ले चल!" लाजो सीधी न होती थी, पूरो की गोद को न छोड़ती थी।

"तुझे लेने तो आए ही हैं, और क्या करने आए हैं! मेरी बात सुन।" पूरो ने लाजो को कन्धे से पकड़कर उठाया।

"हाय, मुझे ले चल!"

"पर तू सभलकर बैठ, कोई आ जाएगा..."

"मुझे लेकर भाग चल! मैं सारी उमर तेरी बांदी बनकर रहूंगी।"

"पागल न बन! ऐसे भागकर मैं कहां ले जाऊं? मेरी बात तो सुन।"

"हाय! मैं कहां जाऊंगी! मैं यहीं तड़प-तड़पकर मर जाऊंगी।" लाजो रोए जा रही थी। पूरो को डर था कि बात भी न हो सकेगी और बुढ़िया आ जाएगी। पूरो ने अपने पल्ले से लाजो का मुंह पोंछा और समझा-बुझाकर उसे चुप कराया।

"कभी तो घर से बाहर निकलती है?"

"नहीं।

"पर सवेरे तो खेतों को जाती होगी!"

"वह साथ होती है।"

"आज संयोग से अमावस है, आज रात को जो तू बाहर वाले कुएं के पास आ सके तो वहां तुझे रशीद घोड़ी लिए तैयार मिलेगा।"

लाजो जैसे झेंप गई। रात को अकेले कुएं के पास पहुंचना उसे अत्यन्त कठिन लग रहा थ। फिर वह रशीद को भी नहीं जानती थी। और यदि किसी ने देख लिया तो फिर किसी की जान भी सलामत न थी।

"मैं घर से बाहर कैसे निकलूंगी?"

"रात को जब सब सो जाएं, तब दांव लगाकर निकल

आना।"

"वह तो दारू भी पीता है। रात को जैसे-तैसे करके दो-चा घूंट ज्यादा दे दूंगी, पर बाहर के आंगन में बुढ़िया..."

"बुढ़िया कुछ अफ़ीम-शफीम नहीं खाती?"

"मैंने तो खाते नहीं देखा।"

"एक बार जो तू वहां पहुंच जाए..."

"पर वहां...मैं उसे जानती भी तो नहीं। जो वहां पर तू मि जाए..."

"वह तो रातोंरात पैंडा मार लेगा और जो मैं भी साथ हुई त फिर तो हम दोनों ही रह जाएंगी।"

"मैंने तो उसे कभी देखा ही नहीं।"

"तू मुझ पर भरोसा कर। तेरी तसल्ली के लिए यह क दूंगी। यह देख, मेरे हाथ की यह अंगूठी उसके हाथ में पड़ी होगी देख लीजो।"

"आज रात दांव न लगा, तब..."

"फिर कल रात। वह पूरी तीन रातें तेरी राह देखेगा।"

"गली में से आहट आ रही है, शायद कोई आ रहा है।"

पूरो खाट से उठकर नीचे बैठ गई। खाट के पैताने खेसों क रखकर पूरो ने पल्ले में बंधी हुई राख की पुड़िया को देखा कि यि बुढ़िया आ जाए तो उसे वह जन्तर और भस्म दे सके।

पर बुढ़िया अभी नहीं आई थी।

"जो तू मुझे इस जन्तर के बहाने रोज़ किसी बावली या कु पर ले जाए और फिर एक दिन...।" लाजो ने अपने स्वर पहले स भी धीमा कर लिया।

"इस तरह मेरे ऊपर पूरा शक हो जाएगा। मैं चाहती हूं कि वह तुझे लेकर गांव से निकल जाए और मैं बाद में भी दो-तीन दिन गांव में फेरी लगाती रहूं। मेरे ऊपर कोई उंगली न उठा सके।"

"मुझे डर लगता है, कहीं कोई रास्ते में ही न पकड़ ले।"

"फिर जो किस्मत में लिखा है, वह तो होगा ही। आगे

कौन-से करम सीधे हैं!"

"पर मैं सारी उमर तेरे ऊपर भार बन जाऊंगी!"

"ये बातें फिर करेंगे, इनके लिए यह समय नहीं है। मेरी सलाह है कि मैं अब चलूं, यही अच्छा है। आज बुढ़िया मुझे न देखे तो..."

"हाय! मुझे भी ले चल।" पूरो उठने लगी तो लाजो बच्चों की भांति उससे चिपट गई। पूरो ने दरवाज़े की ओर देखते हुए लाजो को कसकर अपनी छाती से लगा लिया और बोली, "आज रात...आधी रात को...कल पर मत डालना।" और फिर वह खेसों को संभालकर घर से बाहर निकल गई।

बान की खाट पर लाजो दोनों पैर पसारकर लेट गई। आज उसे अपने शरीर के अंग-अंग में एक प्रकार की प्रफुल्लता का अनुभव हो रहा था। फिर जैसे लाजो को मकान की दीवारों में से आवाज़ आती सुनाई दी, 'आज रात...आधी रात को...।' लाजो ने दालान की एक-एक ईंट को देखा। 'यही मेरा घर था। यहीं मैं पैदा हुई, यहीं पली। यही मैं बड़ी हुई। इस घर से मेरी डोली निकली। यहीं लौटकर मैं मायके आई। सब इस घर से चले गए, पर मेरा मुरदा यही रुलता रहा। मैं अपने ही घर में परदेसी बन गई। इसी घर ने मुझे पैदा किया, इसी घर ने मुझे खा लिया।' लाजो घर की चारदीवारी को देखने लगी। 'इन दीवारों को भी लाज न आई, इन्होंने मेरा सत्यानाश होते देखा, इन्होंने मेरी मर्यादा लुटती देखी, पर आज...आज रात...आधी रात को...सभी दीवारें टूट जाएंगी, सभी चौखटें गिर पड़ेंगी... मैं...।'

बुढ़िया बाहर का भिड़ा हुआ दरवाज़ा खोलकर आंगन में आ गई थी।

'बड़े अच्छे समय गई है।' लाजो ने मन ही मन कहा।

"आज वह खेसों वाली आने वाली थी, अभी आई तो नहीं?" बुढ़िया ने आते ही यह पहली बात पूछी और हाथ का साग-भाजी का बरतन धरती पर रखकर लाजो वाली खाट की पट्टी पर बैठ

गई।

खेसों वाली का नाम सुनकर लाजो के मुख पर एक चमक आ गई। लाजो ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं" और फिर सो लगी, 'पूरो को यह कैसे पता लगा कि मैं यहां रह रही हूं? वह क्यों ढूंढ़ने आई? वह किस गांव में रहती है? मैंने उससे कुछ भ पूछा। पूछने का समय भी कहां था!'—'आज रात...आधी को...' फिर यह ध्वनि लाजो के कानों से उठकर उसके कानों म समाने लगी।

"मैंने कहा, एक मुट्ठी मोठ डालकर बटलोई में चावल च दे। मैं तो थक गई।" कहते-कहते बुढ़िया चारपाई पर निश्च लेट गई।

जिस प्रकार अन्तिम बार के काम को कोई जल्दी-ज निबटाता है, उसी प्रकार लाजो ने उठकर मोठ चुने, चावल और चूल्हे में दो-चार लकड़ियां लगाकर खिचड़ी पकने धर द पहले प्रायः बुढ़िया आटा गूंधती थी, पर आज स्वयं ही लाजो आटा छाना और गूंध लिया।

आज का दिन टूटे हुए जूते की भांति बढ़ता ही जाता थ मुश्किल से करके रात आई। आज जब बुढ़िया का लड़का आया तो लाजो को बहुत कड़वाहट न चढ़ी। पहले रोज़ जब ला उसे देखती थी, उसे लगता था, मानो सैकड़ों ठीकरे उसके माथे टूटने लगे हों।

बटलोई में कड़छी घुमाते हुए आज तीन बार लाजो के हा से कड़छी छिटकी। दो बार उसके हाथों से बेलन छूट-छूट गय एक-दो बार तो उसके हाथ से कांसी का कटोरा भी छूट गया

"ढंग से काम कर।" एक-दो बार बुढ़िया ने खिजलाक कहा।

"आंखें हैं कि बटन! बुढ़िया के बेटे ने भी उसे टोका।

पर आज लाजो को बुढ़िया का एक बोल भी कुबोल न ल रहा था। बुढ़िया के बेटे की बात आज जैसे वह सुन ही नहीं रह

थी। उसे लग रहा था, मानो घर का सब माल-असबाब भी आज बुढ़िया और उसके बेटे का मुंह चिढ़ा रहा हो।

लाजो में आज अपूर्व साहस आ गया था। न उसका जी डरता था, न उसके मन में कोई चिन्ता आती थी। बस, एक निश्चित समय, जैसे निकट, और निकट आता जा रहा था। अभी रात पड़ जाएगी, अभी सब सो जाएंगे, और जैसे साबुन लगे हाथ में से चूड़ी निकल जाती है, वह इस घर से निकल जाएगी।

पहले लाजो जलती-कुढ़ती उठकर शराब की बोतल बुढ़िया के बेटे के आगे लाकर धर देती थी, पर आज लाजो स्वयं ही भीतर से वह शराब की बोतल निकाल लाई जो बुढ़िया के बेटे ने इलायची डलवाकर दुगुनी आंच की खिंचवाई थी और पुरानी और तेज़ होने के कारण अलग रखी हुई थी।

बुढ़िया का बेटा सोच रहा था, आज लाजो ने मोठ की खिचड़ी भी मलाई जैसी बनाई है, आज लाजो दारू की बोतल भी स्वयं निकाल लाई है, आज़ लाजो खुश है, आज...।

बुढ़िया झपकियां ले रही थी।

"आंगन में ठंड हो गई है, मैंने तेरी खाट भीतर डाल दी है, जा, भीतर जाकर लेट।" लाजो ने घर की मालकिन की भांति बुढ़िया से कहा। एक बार बुढ़िया ने आंखें फाड़कर लाजो की ओर देखा।

आज तो जैसे दिन ही पलट गए हैं। आज तो मैं इसे जन्तर पहनाने वाली थी, यह तो पहले ही असर हो गया दीखता है!" बुढ़िया न अपने मन ही मन सोचा और भीतर जाकर लेट गई।

रात का अंधकार पल-पल गहरा होता जा रहा था। बुढ़िया का बेटा शराब में धुत् होकर लाजो की बाहें खींच रहा था।...

रात का पहला पहर कब का बीत गया था। बुढ़िया का बेटा शराब में धुत् होकर खाट पर सो गया था।

उस घर की दीवारों ने, उस घर की कड़ियों ने जहां पहले इतने परिवर्तन देखे थे, उस आधी रात को यह भी देखा कि लाजो

दबे पांव ड्योढ़ी का दरवाज़ा खोलकर उस घर की देहली से
निकल गई।

लाजो थोड़ी दूर चलती, उसे डर लगता, शायद कोई
पीछे-पीछे आ रहा है, किसी ने उसे कंधे से पकड़ लिया है, कि
उसे गर्दन से नाप लिया है। जाड़े की आधी रात की ठंड में भी
के माथे पर पसीने की बूंदें आ गई थीं।

यद्यपि अमावस की रात थी, फिर भी आकाश पर छिट
तारों का प्रकाश भी लाजो को तीखा लग रहा था। अपने घ
दीवार लांघने के बाद अगले घरों के रास्ते पर बढ़ते हुए
एकाएक ठिठक गई। लाजो ने गर्दन घुमाकर अपने घर की
दीवार की ओर देखा। कोहरे की भांति सारी गली में चुप्पी जम
थी। फिर भी लाजो ने गली का सीधा रास्ता छोड़कर घ
पिछली ओर वाला लम्बा रास्ता पकड़ लिया।

घरों की पंक्ति समाप्त हो गई। बाहर के कुएं तक पहुंच
लिए एक लम्बा-चौड़ा मैदान पड़ता था। यहां लाजो के नंगे पै
एक कम्पन उठकर उसके माथे की नसों में फैल गया। ला
पीछे मुड़कर कब्रों की भांति सोते हुए घरों को देखा। अभी
प्रलय नहीं हुई थी, अभी तक क़ब्रों में से कोई मुर्दा नहीं उठा
लाजो को अपनी सांस की आवाज भी सुनार की धौंकनी की
सुनाई दे रही थी, पर लाजो के पास विचारों में डूबने के लिए स
ही कहां था! लाजो ने एक बार तारों के धुंधले प्रकाश को दे
और मैदान में आगे बढ़ गई।

लाजो के दिल को एक यह धड़का था कि मैदान में से
समय उसे दूर से कोई भी देख सकता था। लाजो के शरीर
कपड़े भी कुछ सफेद ही थे, उसे मैले अंधकार में अपने कपड़ों
सफेदी से भी डर लग रहा था। पर अब तो लाजो ने पूरा मैदान
कर लिया था। उसने घूमकर पीछे देखा, सारा मैदान खाली
कुएं की ओर देखते ही लाजो का जी घबरा उठा। कुएं पर कोई
था। रशीद नहीं आया, अब वह कहीं की न रही। गांव लौटने

विचार लाजो के लिए असह्य था। उसने कुएं का एक चक्कर लगाया, मानो अपने मन में धार लिया हो कि यदि अब इस संसार में उसे कोई जगह न मिली तो वह इसी कुएं में डूब जाएगी।

चादर में अपने को लपेटे हुए एक व्यक्ति पास की झाड़ियों में से निकला। "बहन, क्या तू लाजो है?" उस व्यक्ति ने लाजो के पास आकर चादर में से अपना मुंह निकाला।

"भाई, मेरी निशानी दिखा दे।" लाजो ने रशीद की ओर एक दृष्टि देखा। रशीद के चेहरे पर मानो करुणा की मोहर लगी हुई थी। लाजो का चित्त स्थिर हुआ। रशीद ने अपने हाथ की अंगूठी लाजो के आगे कर दी।

"तुझे पहुंचाकर कल या परसों पूरो को ले जाऊंगा, बच्चे उसी के पास हैं।" रशीदा कुएं की मन पर से उतरकर झाड़ियों के पीछे बंधी हुई घोड़ी खोल लाया।

"या अल्ला!" रशीद ने एक बार कहा और लाजो को बांह का सहारा देकर घोड़ी पर बिठा लिया।

घोड़ी को पहली एड़ लगाते ही रशीद को वह समय याद आ गया, जब उसने पूरो को छत्तोआनी के कच्चे रास्ते से उठाकर अपनी घोड़ी पर डाल लिया था। रशीद आज हैरान था, उसे फिर एक बार अपनी घोड़ी दौड़ानी पड़ी। गांव की एक और नवयुवती फिर एक बार भगानी पड़ी। जवानी का वह उत्साह आज रशीद की बांहों में नहीं था; पर रशीद सोच रहा था, पूरो को उठाने के बाद ज्यों-ज्यों वह अपनी घोड़ी दौड़ाता जाता था, मानों भार का एक पत्थर जैसे उसकी आत्मा पर बैठता जाता था। कई वर्षों से वह बोझ उसकी आत्मा पर पड़ा रहा था। आज ज्यों-ज्यों रशीद की घोड़ी रत्तोवाल की सीमाओं को दूर छोड़ती जाती थी रशीद को लगता था कि उसकी आत्मा पर पड़ा वह भारी बोझ सरकता जा रहा है। घोड़ी को मानो पंख लग गए थे।

हमीदा

भोर के फैलते हुए प्रकाश के साथ ही लाजो के गुम ह
की खबर गांव-भर में फैल गई। अभी दही में मथनियां पड़ी
थीं कि हर घर में लाजो की चर्चा होने लगी।

आसपास के गांवों में किसी हिन्दू का नाम-निशान त
था, और कोई मुसलमान यह काम क्यों करता?
हैरान-परेशान थे।

प्रकाश जल्दी-जल्दी बढ़कर चढ़ी हुई धूप बन गय
उपलों के चूल्हों में दाल पक चुकी थी, स्त्रियां अभी तन्दूर ग
रही थीं, जिनमें से जलती हुई छिपटियों की सुगन्ध और ध
लपटें निकलकर सारे गांव पर छा रही थीं। तभी पूरो ने
प्रवेश किया।

आज लाजो-हर के घर का दरवाज़ा किसी मृत पशु
की भांति खुला हुआ था। पूरो ने जब उस घर के दरवाजे के
पैरा धरा, आंगन में बिखरे हुए रात के जूठे बरतनों पर म
भिनक रही थीं। पूरो ने देख लिया कि आज सवेरे से किसी
खाया-पिया नहीं है।

"अरी, तूने कहीं उस कलमुंही को देखा?" बुढ़िया क
पर इतनी तेवरियां चढ़ी हुई थीं कि जान पड़ता था, जैसे कि
मिट्टी की हांडी उसके माथे पर फोड़ डाली हो।

"कौन अम्मा?" पूरो ने अपने सिर पर से खेस उत
अपनी सारी घृणा अपने माथे के बलों में भरकर कहा।

"हाय, हाय, कौन? बहू कहां है?"

"वही जलजानी तो भाग गई है।"

"हाय, हाय, किसके साथ? मैं तो उसके लिए जन्तर और भस्म लेकर आई हूं!"

"चूल्हे में जाएं जन्तर और भस्म! उसे तो न जाने जिन ले गए या भूत।"

"क्या कहती हो, अम्मा! गांव में कौन है जो ले जाएगा? बाहर खेतों में गई होगी, आ जाएगी अभी।"

"लो सुनो! खेतों में गई है! धूप सिर पर आ गई और..."

"पर अम्मा! वह कोई रोटी का टुकड़ा तो नहीं, जिसे कौवे उठाकर ले गए।"

"यही तो मैं कहती हूं। क्या जाने किसी कुएं में डूब मरी है; क्या जाने किसी जोहड़ में गिर पड़ी है!...मैं तो पहले दिन से ही उस पर भरोसा नहीं करती थी, पर यह लड़का ही उसके चोचले किया करता था; कहता था, अम्मा! अब यहा कहां जाएगी, इसका कोई सगा न पराया...।"

"क्यों, अम्मा! उसके मां-बाप किस गांव के हैं?"

"भाड़ में जाएं मां-बाप! मैंने तो पहले दिन ही कहा था, ऐसी परायी ईंटों से घर नहीं बसते, पर उसका तो दिल जो आ गया था, बुढ़िया की कौन सुनता था!...ले, अब तुझसे क्या छिपा है, सारा गांव जानता है, वह हिन्दुओं की बेटी थी। जब गांव से हिन्दू भागने लगे, यह लड़का उसे कहीं से ले आया। अल्ला जानता है, मैं तो पहले दिन से ही कह रही हूं, बेटियां-बहुएं सबके होती हैं। अल्लादित्ता, तू झूठमूठ को पाप की गठरी उठा लाया है, न जाने कौन-से दिन यह पाप सिर से उतार सकेंगे।"

"अच्छा, यह बात थी! तभी, अम्मा, वह पेरी हुई लगती थी। पर भागकर जाएगी कहां? यहां उसका कोई आसपास का तो है नहीं। कौवों से बचेगी चीलों में फंसेगी। मैं समझती हूं, वह किसी कुएं-खाई में गिर-गिरा पड़ी है, चाहे वह जानकर मरी है, या फिर उसकी ऐसे ही आई हुई थी।"

"हम पर से कलंक तो हटा। पर लड़के ने मेरी जान खा रखी

है। कहता है, तू अंधी थी जो तुझे पता न लगा। वह कोई चिड़ि का बच्चा तो नहीं है जो किसी ने उसे अपनी जेब में डाल लिया

"पर अम्मा! वह पहले भी कभी घर के बाहर अकेली ज थी?"

"कहां! उसे क्या मरों के पास जाना था! पहले-पहले तो उ मैं लड़के को रोटी देने जाती थी तो बाहर से ताला लगा जाती थ फिर लड़के ने भी कहा और मैंने भी सोचा, भई यह बेचारी जाए कहां! जो किसी के सिर पर आठों पहर सवार रहो तो उसका जी घ में भी नहीं लगेगा। वह दोपहर को ही घड़ी-दो घड़ी बस घर अकेली रहती थी। कल भी मैं रोटी देकर आई हूं, अच्छी-भली य बैठी हुई थी। मोठ डालकर रात को खिचड़ी बनाई, बथुए का सा पतीले में पकाया, रोटियां सेकीं, हम मां-बेटों को खिलाई, फिर मे चारपाई भीतर डाल गई। कहे, अम्मा, आंगन में अब ठंड हो ग है। लड़के ने ज़रा दारू पी, फिर मैं तो सो गई, फिर पता नहीं कैस होनी किस समय हो गई। सवेरे उठी हूं तो मैंने आवाज़ें दीं, पर को हो तो बोले...।"

"मैंने कहा, कुएं-जोहड़ दिखवाएं है या नहीं? वह किसी क साथ निकल जाने वाली तो दिखाई नहीं देती थी।"

"जाना भी किस के साथ था!...' बुढ़िया ने अपने सिर क अपने घुटनों पर रख लिया।

"बड़े अचरज की बात है! मांस की बोटी तो थी नहीं कि कुत्ते-बिल्ली ने उसे मुंह में डाल लिया। गांव तो तुमने ढुंढ़वा लिय होगा?"

"हां, सवेरे से गांव का एक-एक आदमी यहां आ चुका है। लोगों ने चप्पा-चप्पा भूमि छान मारी है। इस समय तो मेर अल्लादित्ता और गांव के कुछ लड़के कुएं पर गए हैं। जो कहीं मरी हुई की लाश भी मिल जाए तो लड़के के मन में यह तो न रह जाएग कि न जाने कहां गई। लड़के की जान सलामत रहे, औरतें और बहुतेरी...।"

अब तक पूरो के मुख पर हर्ष और शोक के भाव उतरते-चढ़ते रहे थे, अब दो-तीन आदमी बाहर से आ गए।

''हम तो सारे कुएं-खाई देख आए हैं, उसकी तो कहीं हड्डी-पसली भी नहीं मिलती।'' कहकर तीनों आंगन में पड़ी खाटों पर बैठ गए।

''खाए अपनेमां-बाप को! तूने क्यों अपनी जान को रोग लगा लिया है? उठा लिया होगा भूत प्रेतों ने।'' बुढ़िया ने अल्लादित्ता की ओर मुख करके बड़े प्यार से कहा। पूरो ने समझ लिया, यही अल्लादित्ता है।

पूरो को लाजो का उतरा हुआ चेहरा याद आ गया, और उसे लगा, मानो लाजो का मुंह उस चिड़िया के पिंजर की भांति हो, जो इस गलीज़ चील के पंजों में कई दिन तक फंसी रही हो।

''मेरी समझ में तो वह रात-बिरात उठकर बाहर गई है, और उसे कोई जानवर उठा ले गया है।'' उनमें से एक ने अल्लादित्ता की ओर मुंह करके कहा।

''यहां तो कोई गीदड़, लोमड़ी भले ही फिरती हो, और इस गांव के पास कौन-सा जानवर आया होगा!'' दूसरे ने पास बैठे हुए कहा।

''हमारी तरफ से चोर ले गए, ले जाएं। तू उठकर दो कौर तो मुंह में डाल।'' बुढ़िया ने अपने पुत्र को दिलासा देने के लिए कहा और उठकर रोटी-टुकड़े का प्रबन्ध करने लगी।

''अच्छा, अम्मा! अल्ला तेरे जी को शांति दे, मैं चलती हूं।'' पूरो ने खेसों की बंधी-बंधाई गठरी सिर पर उठा ली।

''मैंने कहा, तू कौन है?'' अल्लादित्ता ने पूरो की ओर घूरकर देखते हुए कहा। अब तक पूरो को गांव की ही कोई स्त्री समझते हुए अल्लादित्ता ने ध्यान नहीं दिया था, पर खेसों की गठरी उठाते हुए उसे देखकर अल्लादित्ता ने उससे घुड़ककर पूछा।

''यह कौन है! खेस बेचती है, और कौन है!'' पास से ही बुढ़िया ने उत्तर दिया।

"मैंने पहले तो तुझे कभी नहीं देखा गांव में?" अल्लादित्ता ने सन्देहपूर्वक पूछा।

"कितने दिनों से तो बिचारी यहां बेचती फिरती है!" बुढ़िया ने फिर लड़के को डांटते हुए कहा।

"पर तू किस गांव से आई है?" अल्लादित्ता ने पूरो की ओर मुख करके कहा।

"दो बालक मेरी गोदी में हैं, गांवों में घूम-घूमकर दो-चार पैसे कमा लेती हूं।" पूरो का मन कर रहा था कि किसी प्रकार पंख लगाकर वहां से उड़ जाए। क्यों वह गांव में रह गई? रात को वह भी साथ चली जाती तो कौन उसका पता लगा सकता था!

"पर तू हिन्दू है कि मुसलमान?" अल्लादित्ता का शक अभी तक दूर नहीं हुआ था। उसके दोनों साथी मुस्कराने लगे।

"क्यों भाई, क्या सलाह है? क्या अब इसे घर में डालोगे?" अल्लादित्ता के एक साथी ने उसे चुटकी काटते हुए कहा।

"क्या कहते हो, भाई! मैं यहा हिन्दू कहां से आई!" और पूरो ने परे पड़ी हुई जूती को अपने पांव में अड़ाया और गठरी संभालकर बाहर जाने लगी।

"हिन्दू का नाम उसके माथे पर तो लिखा हुआ नहीं होता।" अल्लादित्ता ने फिर ज़ोर से कहा।

"तेरा तो, भाई, शक दूर ही नहीं होता। यह देख, मेरा नाम हमीदा है।" और पूरो ने दलहीज़ में खड़े-खड़े अपनी बांह पर गुदा नाम दिखा दिया।

"जा, भई जा, इसका तो सिर फिरा हुआ है।" बुढ़िया ने कहा।

"मुझे अगर कुछ पता चला तो मैं आप आकर बताऊंगी, अम्मा!" कहते-कहते पूरो तेज़ कदमों से गली में हो ली। बावली वाली कोठरी में पूरो ने अपने दोनों बालक छोड़े हुए थे। जावेद अब सयाना हो चला था, वह छोटे लड़के को बहलाए रखता था।

पूरो ने वह रात घड़ियां गिन-गिनकर काटी। दूसरे दिन सवेरे

रशीद लाजो को सक्कड़आली अपने घर छोड़कर पूरो के पास लौटकर आने वाला था। वही रात रत्तोवाल में पूरो की अन्तिम रात थी। पूरो तारे गिनती दोनों बालकों को लेकर चारपाई पर पड़ रही।

आज रत्तोवाल में पूरो की सारी मनोकामनाएं पूरी हो गई थीं। पूरो को पिछली बार रत्तोवाल आने का ध्यान आया, खेतों में, क्यारियों में अपना घूमना याद आया। फिर अन्तिम दिन रामचन्द का खेत में मिलना याद आया...पिछली बार पूरो ने रामचन्द के खेत देखे थे...इस बार पूरो ने रामचन्द का वह घर, वह आंगन भी देख लिया, जिसे देखने की लालसा उसे वर्षों से थी। पूरो सोचने लगी, इस घर में उसको घर की बहू बनकर आना था, इस घर में उसकी बहन ब्याहकर आई। इस घर में उसका भाई बरात लेकर आया, पर उसने इस घर का मुंह कब देखा जबकि इस घर में घरवालों की छाया भी शेष न रही। इस घर के जबड़ों में उसने केवल लाजो का पिंजर देखा...शुक्र है, लाजो की कैद अब खत्म हो गई थी। पूरो फिर सोचने लगी, 'आज तो वह आप ही उस पिंजरे में फंसी हुई थी, 'हमीदा' नाम ने उसे बचा लिया।'

पता नहीं, किस समय पूरो की आंख लगी और रात का अंधकार धीरे-धीरे सवेरा बन गया।

सक्कड़आली में

आने-जाने का पूरा इक्का करके रंशीद रत्तोवाल आया और पूरो को लेकर सक्कड़आली लौट गया।

लाजो की दोनों बड़ी-बड़ी आंखें मानो बन्द दरवाज़े पर ही लगी हुई थीं, उसने पूरो-हर के पहुंचने के पहले ही खड़ाक से बन्द दरवाज़े का कुंडा खोल दिया। रशीद ने एक ताला बाहर से लगा दिया था कि जिससे गांव के लोगों को शक न पड़े। ड्योढ़ी का दरवाज़ा अन्दर से बन्द करके पूरो, लाजो और रशीद अपने मकान

की सबसे पिछली कोठरी में एक बार तो ऐसे बैठ गए, मानों शेर से डरे हुए हिरनों की डार को कोई नई खोह मिल गई हो।

लाजो और पूरो दोनों को लगा, मानो वे साथ खेली हों, साथ पली हों, दोनों एक-दूसरे की आत्मा हों, पर समय के फेर के कारण वर्षों के लिए बिछुड़ गई हों, और आज किसी तूफान के बाद, किसी आंधी के बाद दोनों फिर अपने-आप मिल गई हों, वर्षों के विरह और जीवन की कहानियां दोनों के होंठों पर जमकर रह गई हों। दोनों ही अपनी-अपनी कहने को व्याकुल थीं, दोनों ही एक-दूसरे की सुनने को व्याकुल थीं।

खाने-पीने से निबटते-निबटते दिन अच्छी तरह चढ़ गया था। रशीद यह बात समझता था कि दोनों को अकेले में बैठकर एक-दूसरे से अपने दिल की कह-सुन लेनी चाहिए। वास्तव में आरम्भ से ही रशीद का दिल खोटा नहीं था। वह सोचता था, पूरो के साथ उसके कुछ लेने-देने के हिसाब थे, नहीं तो वह इतना बुरा आदमी नहीं था कि रास्ता चलती किसी की शरीफ बहन-बेटी को ज़बरदस्ती अपने घर में डाल लेता। पूरो को अपनी स्त्री बना लेने के बाद रशीद ने कभी आंख उठाकर किसी की बहन-बेटी को न देखा था।

दोनों बालकों को लिटाकर दोनों जनी भीतर वाली कोठरी में खाट डालकर लेट रहीं। रशीदा उस दिन साथ के बरामदे में सोया।

"रत्तोवाल का काफिला इसी गांव से गुजरा था।" पूरो ने ही बात चलाई।

"तूने देखा था?" लाजो और पूरो अभी तक मिलकर नहीं बैठ सकी थीं। लाजो को कुछ पता न था कि पूरो ने उसे क्यों और कैसे ढूंढ़ निकाला।

"मैं तेरे भाई से मिली थी, तभी तो मुझे तेरा पता लगा।"

"हैं!..."

"हां...।" और काफिले के दिन वाला रामचन्द का मुख पूरो

की आंखों के सामने आ गया।

"तूने उसे कैसे पहचाना? तूने तो उसे कभी देखा भी न था!" लाजो के मन में अनेक बातें उठ रही थीं, कैसे पूरो की उसके भाई के साथ सगाई हुई थी, कैसे उसके भाई के साथ विवाह रचा जाने वाला था, कैसे फिर पूरो एकाएक गुम हो गई थी, फिर पूरो की छोटी बहन उसके भाई को ब्याही आई थी।

"मैंने उसे एक बार पहले भी देखा था।" पूरो ने रत्तोवाल के खेतों वाली बात लाजो को सुनाई। पूरो ने यह भी बताया कि उस समय तक उसे यह पता न था कि रामचन्द उसका बहनोई बन चुका है।

"मुझे कभी भी कोई खैर-खबर नहीं मिली। केवल जिस दिन काफिला इधर से गुज़रा...मरे हुओं को भी लोग याद करते हैं, उनके नाम से श्राद्ध खिलाते हैं, कभी-कभी घर में कोई मेरा नाम भी ले लेता होगा?" पूरो का गला भर आया।

लाजो ने उसे बताया कि उसका पिता तो दो साल हुए, मर चुका था, उसकी मां कई बार उसका नाम ले-लेकर रो लेती थी।

"मेरी मां के करम, बेटी भी उसकी जीते-जी मर गई और बहू भी।" पूरो ने कहा, और पूरो और लाजो दोनों रोने लगीं।

"बूचड़खाने की गउओं की भांति दोनों अपनी चारपाई की पट्टियों से लगी पड़ी रहीं।

"तू जब वहां जाएगी, मेरी मां से मिलेगी तो उससे कहना कि एक बार मुझ ज़ीती का मुंह तो देख ले..." पूरो ने और भी रोकर कहा।

"मैं...मैं वहां कहां जाऊंगी..."

"तू अपने घर आएगी, अपने पति के पास, अपने भाई के पास।"

"मैं तो जीती मर चुकी हूं, मुझे अब कौन कबूल करेगा?"

"नहीं लाजो, मैं अपने जीते यह अन्याय न होने दूंगी। तू अपने घर जाएगी। तेरा इसमें क्या दोष है?"

"पर तेरा भी क्या दोष था? तुझे आज तक घरवालों ने न बुलाया!"

"मेरी बात और थी लाजो!"

"तेरी बात और कैसे थी? तू क्या अपनी मरज़ी से आई थी? तू भी तो..."

"हां, लाजो! पर तब मैं अकेली थी। मेरे मां-बाप को साहस न हुआ कि वे लोगों की बातें सुन सकें, और उन्होंने अपनी ममता को अपने से अलग तोड़कर फेंक दिया। अब किसी एक को नहीं, सबके कलेजे पर लगी है।"

"नहीं, पूरो! मेरी किस्मत अच्छी होती तो पहले ही मेरे साथ यह अत्याचार न होता। मैं जानती हूं, मुझे कोई लेने नहीं आएगा।"

"मैं कहती हूं, तेरे भाई का पत्र जरूर आएगा। हम तेरा पता देंगे और वह तुझे लेने जरूर आएंगे। मेरा भाई देखने में कैसा लगता है?"

पूरो ने लगाव से पूछा।

लाजो को अपने पति का ध्यान आ गया। वह कैसे उसका मुख देख सकेगी, वह कैसे घरवालों के सामने पड़ सकेगी,—लाजो सोचने लगी। पर लाजो के दिल में मानो विश्वास था कि उसे लेने कोई नहीं आएगा, वैसे मन के लड्डू वह जितने चाहे फोड़ ले।

"नहीं, लाजो! कोई न कोई तुझे लेने जरूर आएगा। आज किसी को शिकायत नहीं, सब अपनी बेटियों, बहनों को ले जा रहे हैं। रशीद कहता है उधर से भी ढूंढ़-ढूंढ़कर लोग अपनी स्त्रियों को वापस ला रहे हैं, कइयों के तो बच्चे भी हो गए हैं।" और फिर दोनों की दोनों गुमसुम होकर स्त्रियों की इस विवशता पर विचार करने लगीं।

लाजो सोचने लगी, आज तक उसके घर कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ था, पता नहीं उसमें क्या दोष था! आज यही दोष उसे फला, नहीं तो न जाने उसकी क्या दुर्दशा होती!

"जहां वे एक के लिए रोते हैं, अब दो के लिए रो लेंगे। मैं कहीं नहीं जाऊंगी, पूरो! मैं क्या मुंह लेकर जाऊंगी! मैं तेरे बालकों की टहल करके रोटी खा लूंगी।"

"ऐसे क्यों कहती है, लाजो! मेरे घावों पर नमक मत छिड़क। यह तेरा अपना घर है। पर लाजो! वे तुझे जरूर ले जाएंगे। मैं सारी दुनिया का वास्ता देकर उन्हें मना लूंगी।"

पूरो ने लाजो को अपनी बांहों में कस लिया।

"तू अपने घर मज़े में है , पूरो?"

"रशीद का पीठ-पीछा है। पहला गुनाह जो उसने किया सो तो किया, पर उसके बाद उसने मुझे कभी बुरा-भला नहीं कहा। वह मेरे साथ न होता तो मैं तुझे खोजकर कैसे ले आती?"

"मुझे ले आने में उसने अपनी जान बड़ी जोखिम में डाली। जो कहीं उस राक्षस को पता चल जाता तो वह मेरी हड्डियों को फूंककर ही पानी पीता..."

"वे कहां फूंकते हैं बावली! वे लोग तो गाड़ देते हैं।"

"कुछ सही, पर पूरो, कहीं वह इस गांव का पता तो नहीं लगा लेगा? मेरा तो जी डरता है, कहीं तुम्हारा बसा हुआ घर न उजाड़ दूं।"

"अभी तक तो उन्हें तेरी परछाईं का भी पता नहीं लगा है!" और पूरो ने लाजो के खो जाने के बाद बुढ़िया और बुढ़िया के बेटे से अपने मिलनेकी सारी बात कह सुनाई।

"पहले भी इसी पिछली कोठरी में कई दिन तक मैंने एक हिन्दू लड़की छुपाकर रखी थी। किसी को उसकी हवा तक न लगने दी। फिर उस दिन मैं उसे काफिले में छोड़ आई। तुझे भी यहां भीतर चोरी-चोरी रखूंगी, ताकि गांव में कहीं कुछ बात न उड़ जाए। जिस दिन खत-पत्र आ गया, तुझे चुपके से ले जाकर लाहौर छोड़ आएंगे। किसी को कानोकान खबर भी न होगी।"

"और जो उनका पत्र न आया..."

"मेरा दिल गवाही देता है, लाजो! तेरा भाई अवश्य पत्र

डालेगा।"

हिचकोले

दिन पर दिन बीतते गए, भोर होती, सांझ होती। न लाजो की खबर घर के बाहर निकली, न लाजो के घरवालों की को खैरखबर आई। वैसे पूरो और लाजो हर घड़ी साथ रहती थीं। रा को जब उनकी आंखों में नींद घुल जाती, दोनों की आंखों में सप ही सपने बिखर जाते थे। मुंह-अंधेरे उठकर वे बातें करने लगती सपनों में शकुन-अपशकुन विचारतीं। कभी उनका मन चक्क में पड़ जाता, कभी उनका मन स्थिर हो जाता। कितनी ही बा लाजो बालकों की भांति चूल्हे में से कोयला निकालकर धरती प लकीरें खींचने बैठ जाती, कभी शकुन शुभ निकलता, कभ अशुभ। कभी बातें करते लाजो की आंखों से आंसुओं की धारा बह निकलतीं, कभी वह पूरो के बच्चों के साथ खेलकर अपना ज बहला लेती। वैसे लाजो के मन में प्रायः निराशाजनक बातें ही उठ करती थीं। उसे आशा नहीं थी कि कभी कोई उसकी खबर लेगा पर पूरो के मन को अन्दर से न जाने कौन बढ़ावा देता था कि किस दिन चुपके से कोई आ पहुंचेगा, किसी दिन अचानक ही को खत-पत्र आ जाएगा, लाजो के दिन फिर जाएंगे। पूरो ने अपन ओर से लाजो का आतिथ्य-सत्कार करने में कोई कसर न उठ रखी थी। वह सोचती थी कि लाजो थोड़े दिनों के लिए धरोहर रूप में उसके पास है, फिर शायद वह उससे कभी न मिल सकेगी उसे भी न देख सकेगी, सबों के मुख भी उसे उस समय केवल लाज की मुखाकृति में ही दीख पड़ते थे। कौन उसके घर रहने के लि आएगा, कौन उसे मिलने के लिए आएगा! उसके अप सम्बन्धियों में से लाजो ही उसके घर की प्रथम तथा अन्ति

अतिथि थी।

दिन के प्रकाश में लाजो ने कभी डचोढ़ी न लांघी थी। रात के अंधकार ने लाजो का भेद बड़े ही ध्यान से सुरक्षित रखा था; पर गांव के डाकिये ने तीन पैसे वाला कार्ड भी उसके आंगन में न फेंका।

लाजो और पूरो के मुख पर चिन्ता की रेखाएं दीखने लगीं। लाजो के मन को केवल एक यह सन्तोष अवश्य था कि पूरो और रशीद ने कभी उसे जी छोटा करने न दिया। पर सारा-सारा दिन छिपे हुए, दुबके हुए लाजो सोचती कि पहाड़ जैसी उमर उसके सिर पर लटक रही है, कब इस प्रतीक्षा के दिन पूरे होंगे!

पूरो का किसी से बहुत आना-जाना नहीं था। लाजो पिछली कोठरी में ही उठती-बैठती थी। दोपहर को कभी-कभी दोनों जनी बाहर का कुंडा लगाकर चरखा कातने बैठ जाती थीं। दिन बीत जाता था, पर उनकी चिन्ता न बीतती थी।

जाड़ा बीत चुका था। फ़ागुन का भी पिछला पक्ष आ गया था। पानी में ठंड न रही थी। एक दिन ढलती दोपहरी के समय जब रशीद डचोढ़ी लांघकर घर आया तो लाजो और पूरो को देखते ही उसकी आंखें डबडबा गईं।

सहमी हुई दोनों उसके पास आईं। कई मिनट तक वह कुछ न बोल सका। लाजो को लग रहा था, कोई उसके कलेजे को बाहर खींच रहा है। उसे एक यही डर था कहीं रत्तोवाल की बुढ़िया और उसके बेटे को लाजो का पता लग गया है, वे उसे ज़बरदस्ती घसीटकर ले जाएंगे, पता नहीं पूरो पर क्या बीते?

रशीद चारपाई की पट्टी पर बैठ गया, कुरते की बांह से दोनों आंखें पोंछकर उसने लाजो की पीठ पर प्यार से थपकी दी। उसके हाथों में वही प्रेम था, जो एक बुज़ुर्ग पिता को लड़की को ससुराल भेजते समय होता है। रशीद का दिल भर आया था। उसने अपने मन को स्थिर करके कहा, ''आज रामचन्द आया है।''

''यहां?'' लाजो और पूरो एकसाथ बोल उठीं।

"हां, साथ में हिन्दुस्तान पुलिस के कुछ सिपाही हैं, व
पाकिस्तान के। लोग इसी तरह गांवों और शहरों में खोई
लड़कियों को ढूंढ़ रहे हैं। रामचन्द मुझे अकेले में भी मिला था
रशीद कह रहा था।

"सचमुच मुझे लेने आए हैं?" लाजो के मुख से अकस्मात्
निकल गया, पर फिर वह स्वयं ही लज्जित-सी हो गई। उसे ल
रहा था, मानो उसने कोई अनावश्यक प्रश्न कर दिया हो।

"पगली कहीं की, और वह यहां क्या करने आए हैं?" रशी
ने कहा।

पूरो अभी तक चुप बैठी थी। उसे अपने अन्तस्तल में ए
अपूर्व प्रसन्नता का अनुभव हो रहा था, क्योंकि उसका विश्वा
सत्य सिद्ध हुआ था। वह जानती थी, रामचन्द आएगा; वह जान
थी, उसकी भाभी अपने ठिकाने पहुंच जाएगी। लाजो तो व्यर्थ
दिल हार बैठती थी। जिन दिनों रशीद भी निराश-सा हो जाता थ
पूरो के मन में मानो कोई गवाही देता था कि रामचन्द अवश्य अ
गया था।

"क्या अकेला आया है?" लाजो ने पूछा।

रशीद समझ गया कि लाजो के इस प्रश्न का क्या अर्थ है

बोला, "हां, अभी तो अकेला ही आया है। पर तू चिन्ता
कर। तेरे घर के सब तुझे सिर-आंखों पर बिठलाकर ले जाएंगे

लाजो के मन को कुछ सन्तोष हुआ।

"तेरा नाम सुनकर, तेरी खबर सुनकर रामचन्द रोता ह
रहा उसके आसूं किसी तरह थमते न थे। उसे देखता था त
मेरा जी भी भर-भर आता था। रशीद की आंखें फिर भर आईं
लाजो और पूरो रोने लगीं।

"मैंने उन्हें अच्छी तरह समझा-बुझा दिया है। आज तु
यहां पर इसी तरह दे देने से सारे गांव को खबर हो जाती। कौ
जाने बात रत्तोवाल तक भी पहुंच जाती। मैंने उनसे कहा है, तु
वापस लाहौर चलो, मैं लड़की को लेकर लाहौर पहुंचता हूं, वह

तुम्हारे हवाले कर दूंगा।"

"यह अच्छा किया।" पूरो ने कहा।

"हम वहां आज से पांचवे दिन पहुंचेगे। तब तक वह अमृतसर से पूरो के भाई को भी बुला लेंगे। मैंने सोचा, एक बार पूरो भी अपने भाई से मिल लेगी।" रशीद लाजो की पीठ पर हाथ फेरता हुआ कह रहा था।

पूरो की बिंधी हुई रुलाई निकल गई। लाजो ने पूरो की गोदी में सिर रखकर उसे अपने से चिपटा लिया। दोनों एक-दूसरे में खोई हुई थीं, दोनों एक-दूसरे के दुख की साझीदार हो गई थीं, दोनों के आसू आपस में मिल गए थे।

लाहौर का रास्ता मुश्किल से कोई डेढ़ दिन का था। यहां से चलने में अभी पूरे तीन दिन रहते थे।

अगले दिन पूरो ने बेसन मंगवाया, इक्ट्ठा किया हुआ भैंस का मक्खन निकाला, बादाम और मेवा डालकर पूरो दिन-भर लड्डू बनाती रही। जैसे लड़कियों को ससुराल विदा करते समय किया जाता है, पूरो ने एक रेशमी जोड़ा निकाला। लाजो को वह बार-बार अपने गले से लगाती, बार-बार उससे मिलकर रोती।

पिछले चार दिन से पूरो के हृदय में अनेक प्रकार के विचार उठते रहे थे, उसकी रातें सोचते-सोचते बीती थीं। पूरो अपने मन में निश्चय करती, मैं लाजो से कहूंगी, मेरी मां से जाकर यह कहना, मेरी मां को जाकर यह बताना। उससे कहना, एक बार मुझ जीती का मुंह तो देख ले...' सोचते-सोचते पूरो का गला भर आता, सोचते-सोचते फिर पूरो को कहने के लिए बहुत कुछ सूझता, सोचते-सोचते फिर पूरो के मुंह से एक बात भी न निकलती थी।

लाजो को अपने भाई और अपने पति का मुख देखना बड़े ही अचरज की बात जान पड़ती थी; ऐसी ही, जैसे कोई मरकर अगली दुनिया में बिछुड़े हुए लोगों से मिलने की आशा रखता हो। यद्यपि लाजो को अपने घरवालों से बिछुड़े हुए पांच-छः महीने ही हुए थे, उसको लगता था कि एक बार मरकर इस धरती पर जीवित हो गई

है।

सारे रास्ते दोनों का मन हिचकोले खाता रहा।

एक घड़ी

पुलिस के पहरे में जब वे मिले, लाजो से अपनी पलकें न उठती थीं। पूरो ने अपने भाई के मुख की ओर देखा। मिल इस एक घड़ी के एक ओर चिरकाल का बिछोह था, मिलन व घड़ी के दूसरी ओर असीम विछोह दृष्टिगोचर हो रहा था। कि भी आंसू थमने में न आते थे।

मरद-मानसों का जिगरा भी टूट गया था। होनी का ज पहाड़ उन पर टूट पड़ा था, उसके आगे किसी को किसी से पूछना न रह गया था। रो-रोकर उन्होंने अपने हाथ भिगो रो-रोकर उन्होंने अपने कपड़े भिगो लिए।

"सुनना जी! कभी भूल से भी लाजो का निरादर न करन सबसे पहले पूरो बोली।

लाजो के पति का मुंह नीचा था, लाजो के भाई का मुंह था।

"पूरो, हमें लज्जित न कर।" लाजो के भाई ने कहा

लाजो का पति कुछ न बोल सका। शायद वह कुछ सुन सका था। आज उसने केवल अपनी खोई हुई पत्नी ही नहीं थी, बल्कि अपने होश संभालने से पहले की खोई हुई अपनी ब को देखा था। वर्षों से उसके हृदय में एक आग सुलगती रही जिसकी एक चिनगारी उसने रशीद-हर के खेत में लगा दी जिससे सब कुछ जलकर राख हो गया था। अनेक वर्षों से वह राजकुमारी की कहानी के संबंध में सोचता रहा था, जिसे एक चुराकर ले गया था और फिर पूर्व देश का एक राजकुमार अपने जादू के तीरों के बल से छुड़ाकर लाया था। छुटपन में उ

कई बार साधु-सन्तों से जादू के वे तीर मांगे थे। बड़े होने पर पूरो के ध्यान से वह व्याकुल हो उठता था। आज वर्षों की खोई हुई पूरो उसकी आंखों के सम्मुख बैठी थी। इस घड़ी वह भूल गया था कि रशीद ने उसकी पत्नी को बचाया है, इस घड़ी उसे केवल यही याद था कि रशीद उसकी बहन को उठाकर भाग गया था।

पुलिस की लारी तैयार हो गई। हिन्दुस्तानी पुलिस के सिपाहियों ने आवाज़ दी, ''उधर जाने वाले हिन्दू एक ओर हो जाएं, लारी तैयार है।''

रामचन्द ने रशीद को बार-बार अपने गले से लगाया और बार-बार, ''भाई, तेरी बड़ी कृपा है, मैं तेरा उपकार कभी नहीं भूलूंगा। रशीद के मुख पर यह उपकार करने की प्रसन्नता तो थी, पर उसकी आंखें लाजो को बचाने के बाद भी लज्जित थीं। उसे पूरो को उठाकर भगा लाना याद आ रहा था। फिर भी उसे लग रहा था कि उसके सिर पर चढ़ा हुआ ऋण कुछ न कुछ कम हो रहा था।

आवाज़ फिर आई, ''उधर जाने वाले हिन्दू एक ओर को हो जाएं।''

पूरो ने वह रेशमी जोड़ा और बेसन के लड्डुओं की गठरी लाजो के हाथ में थमा दी, लाजो को कसकर अपने गले से लगाया और फिर उसने भाई से अन्तिम बार मिलते हुए उसके गले से लिपट गई।

पूरो...! पूरो का भाई केवल इतना कह सका और उसने पूरो की बांह को कसकर पकड़ लिया।

मेरी बात सुन, इस समय...'' पूरो के भाई ने साहस करके कहा। पूरो अपने भाई की बात समझ गई। पूरो के मन में भी एक बार रीझ उत्पन्न हुई, 'जो मैं इस समय कह दू मैं एक हिन्दू स्त्री हूं तो मुझे अवश्य ही वह इन सबके साथ लारी में बिठाकर ले जाएंगे। मैं भी लौट सकती हूं, मैं भी लाजो की भांति...देश की हजारों लड़कियों की भांति...

पूरो की आंख में रोके हुए आंसू उभर आए। उसने धीरे से

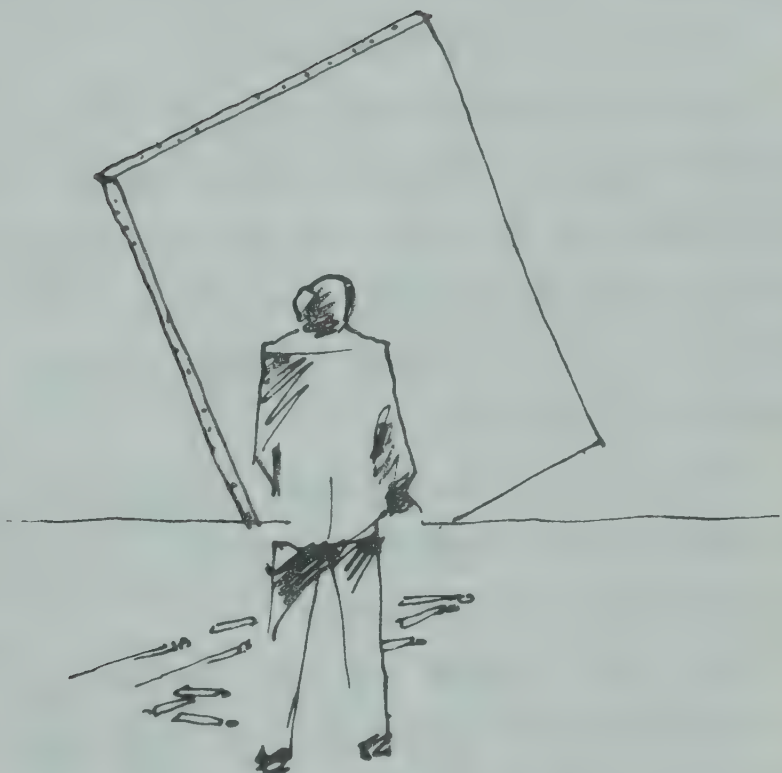
अपने भाई के हाथ से अपनी बांह छुड़ा ली और परे खड़े हुए
के पास जाकर अपने लड़के को उठाकर अपने गले से लगा वि

लाजो अपने घर लौट रही है, समझ लेना कि इसी में प
गई। मेरे लिए तो अब यही जगह रह गई है।'' पूरो ने धीरे से
भाई से कहा जो लारी पर चढ़ रहा था।

रामचंद ने नतमस्तक हो पूरो के आगे हाथ जोड़े
अन्तस्तल की कोई पीड़ा उसके होठों पर आकर जम गई
कुछ बोल न सका।

चाहे कोई लड़की हिन्दू हो या मुसलमान जो लड़व
लौटकर अपने ठिकाने पहुंचती है समझो कि उसी के साथ पू
आत्मा भी ठिकाने पहुंच गई। पूरो ने अपने मत में कहा और
आंखों को धरती की ओर झुकाकर रामचन्द को अन्तिम
किया।

लारी चल पड़ी थी। खाली सड़क पर धूल उड़ने ल



એક ખાલી પવાઈ

एक ख़ाली जगह

खामोशी की लकीर पर पांव रखकर आज फिर मुक्ता के लिए दिलीप राय के घर से शादी का पैगाम आया...

तीन महीने पहले भी आया था...

यह पैगाम जैसे एक स्थूल चीज़ हो और रात के अंधेरे में न जाने घर के खुले हुए दरवाज़े से भीतर आई हो, या सबकी आंख बचाकर खिड़की के रास्ते। पर उस रात मुक्ता को लगा, जैसे उसकी चारपाई की पट्टी को पकड़कर वह धीरे से चारपाई के ऊपर आ गई हो, और मुक्ता की बांह से लगकर वह सारी रात चारपाई पर सोती रही हो...

नींद में करवट बदलते समय भी मुक्ता को आभास होता रहा, जैसे वह अभी उसकी दाईं तरफ थी, और अभी बाईं तरफ हो गई—जिधर उसने करवट बदली...

बहुत नरम, हिलती हुई, और जीवित चीज़..

उस दिन सवेरे मुक्ता रोज़ की तरह सहज तौर से नहीं जागी—आंख खुली तो उसका अपना हाथ पास की खाली जगह को टटोल-सा रहा था...

और फिर वह चौंककर चारपाई से उठी थी, और उठकर भी खाली चारपाई को देखे जा रही थी, जैसे वह चीज़ अगर इस समय चारपाई पर नहीं थी तो कहां थी...

बिखरे हुए मन को वह शीशे के सामने खड़े होकर देखने लगी, पर खड़े-खड़े शीशे में जैसे वह खुद मढ़ी गई...

और शीशे में मढ़े हुए उसके होंठ तीन महीने से खामोश थे...

यह खामोशी की एक लकीर थी—जो मोतियाखान की घनी और तंग आबादी की एक गुमनाम-सी गली में रहने वाली मुक्ता के घर से लेकर दिल्ली के एक खूबसूरत टुकड़े पंचशील पार्क के दिलीप राय के घर तक खिंची हुई थी...

और उसी खामोशी की लकीर पर पांव रखकर आज फिर मुक्ता के लिए दिलीप राय के घर से शादी का पैगाम आया था...

निम्न मध्य श्रेणी के घरों की एक खास गन्ध होती है—चारपाइयों के नीचे घुसाकर रखे हुए ट्रंकों और टीन के डिब्बों की तरह हर समय घर में छिपकर बैठी हुई भी और खूंटियों पर लटकते हुए मैले-घिसे कपड़ों और राम, कृष्ण या हनुमान के कैलेण्डरों की तरह घर की दीवारों पर जमकर निःशंक खड़ी हुई भी...

मुक्ता जानती थी कि उसने जब भी इस घर की गंध से उभरना चाहा था, यह गन्ध बहुत तीक्ष्ण हो गई थी—गाढ़ी, इतनी कि मुक्ता को इसमें से बाहर निकलने का कोई रास्ता दिखाई नहीं देता था। उसने कॉलेज की पढ़ाई की थी, पर वह उसे इस गन्ध से बाहर नहीं निकाल सकी थी। यह केवल समय के साथ ज़रा-सा अपनी जगह से सरकता हुआ उसके मां-बाप का दृष्टिकोण था, एक मजबूरी थी, कि पढ़ाई का एकाध टुकड़ा अब उनकी श्रेणी वाले लोगों में भी लड़कियों के दहेज का हिस्सा हो गया था।

और गत वर्ष मुक्ता ने एक चेतन प्रयत्न किया था जब शहर की सबसे सुन्दर लड़की का चुनाव होना था तो उसने अपना नाम आवेदन-पत्र पर लिखा था, और फिर अपने कद को और कमर को नापकर जब बाकी विवरण को उसपर भर रही थी—कद पांच फुट छः इंच, कमर वाईस इंच, छाती बत्तीस इंच, तो घर की गन्ध एक आंधी की तरह सारे घर में तेज़ चलने लगी थी, और आवेदन-पत्र पर लिखा हुआ मुक्ता का नाम अपनी लकीरों में ही कांपकर रह गया था...

घर की सब चीज़ें, जब से वह देख रही थी, स्थिर थीं—घर

की ईंटें भी, जो उसके पिता के पिता ने चिनवाई थीं; मां के कमरे में छोटे शीशों वाला पलंग भी, जो मां की सास के दहेज में आया था; और चौके की गढ़े पड़ी गागर और वह चू रही बटलोई भी, जिसपर घर के एक पुरखा का नाम खुदा हुआ था—चन्दासिंह।

और मुक्ता जानती थी—कि उसकी मां का जल्दी से लड़की के हाथ पीले करने का वह सपना भी स्थिर था, जो कभी उसने अपनी मां से विरसे में पाया था...

केवल चीज़ें ही नहीं—घर की वह गिनती भी स्थिर थी, जो घर की हर बेटी के घर से जाने के समय, और हर बहू के घर आने के अवसर पर पूरी होती है—दहेज के पांच गहने और ग्यारह सूट, लड़के की अंगूठी और घड़ी, समधिन का रेशमी सूट और सोने की माला, समधी का गर्म दुशाला और इक्यावन रुपये, इक्कीस रुपये बड़े भाई के, ग्यारह छोटे के...

बैठी उंगलियों पर हिसाब लगाती मां के मुंह से यह गिनती मुक्ता ने इतनी बार सुनी थी कि वह गिनती भी एक स्थिर वस्तु की तरह उसे घर में पड़ी हुई जंतरी के समान दिखाई देने लगी थी...

निरी जंतरी ही नहीं, मुक्ता को लगता, यह घर की हर लड़की की जन्मपत्री है।...

और वह सोचती—यह एक वर्तमान है, जो एक पीढ़ी से रेंगता-रेंगता दूसरी पीढ़ी तक पहुंच जाता है और हमेशा स्थिर दिखाई देता है...

यह स्थिरता, मुक्ता को विश्वास है, इसी तरह रहनी थी, पर अचानक, जो इस घर के सपनों से परे था, वह घट गया, और यह स्थिरता कहीं भीतर से हिल गई...जो अभी भी हिल रही है, जैसे भूकम्प के बड़े झटके के बाद फिर कई बार छोटे-छोटे झटके आते रहते है...

उसका पहला झटका था कि मुक्ता के पिता कितने ही समय तक अपने कानों को टटोलकर देखते रहे थे, विश्वास नहीं बंधता था कि वह पैगाम उन्होंने अपने कानों से सुना है...

मुक्ता के पिता शहर के एक उस पुराने वकील के मुन्शी थे, जिसका सबसे बड़ा और सबसे अमीर मुवक्किल दिलीप राय का पिता था, जिसकी बहुत बड़ी ज़मींदारी थी, और जिसके झगड़ों को निबटाने के लिए वकील की बंधी हुई तनख्वाह होती थी, और उसके अलावा, जब दिलीप राय के पिता ने एक्सपोर्ट का काम शुरू किया तो फॉरेन एक्सपोर्ट के मामले में उनका वकील रिज़र्व बैंक से काम निकालने के लिए बम्बई जाया करता था...और उसके लिए हर बार हवाई जहाज़ की टिकट लाते समय उसके मुन्शी की आंखों के आगे मुवक्किल की अमीरी एक अचम्भे की तरह फैल जाया करती थी...और अब जब उसी घर से उसकी अपनी बेटी के लिए शादी का पैगाम आया, तो वह सचमुच चकरा गया...

मोतियाखान जैसे इलाके की एक गुमनाम-सी गली के इस घर में वास्तव में एक भूकम्प आ गया...पैगाम आया, तो मुक्ता की मां ईंटों के दरज़ वाले फर्श पर एक बार इस तरह फिसल पड़ने को हुई, जैसे वह सफेद सीमेण्ट का अभी-अभी टाटरी से धोया और बैक्स से पॉलिश किया हुआ फर्श हो...

यह भूकम्प मुक्ता के मन में भी आया, पर उस तरह नहीं, जैसे मां के या पिता के मन में आया था...

२

अभी पूरा एक वर्ष भी नहीं हुआ था...जब मुक्ता ने दिलीप राय का घर देखा था। एक संयोग था—जब दिलीप राय की रिश्ते में बहन लगने वाली एक लड़की कुसुम मुक्ता के कॉलेज अपनी किसी पुरानी सहेली से मिलने के लिए आई थी, और दोनों की परिचित उस लड़की ने उसकी मुक्ता से भेंट कराई थी, उसी दिन कोई एक घण्टे के लिए वे तीनों दिलीप राय के घर गई थीं...

अमलतास के पीले गुच्छों में और गुलमोहर के लाल फूलों से घिरे हुए मकान की एक झलक-सी आज भी मुक्ता को याद हो आई

तो मन में से एक सुगन्ध-सी आने लगी...पर इस तरह, जैसे यह सुगन्ध उसके लिए वर्जित हो...

उस दिन उसने कुछ मिनट के लिए दिलीप राय को भी देखा था, उसकी पत्नी को भी, और उसके लगभग एक वर्ष के बच्चे को भी...

वह सब कुछ खूबसूरत था—पर जब दूर था तो बेगाना था, सहज था। अब—जब वह सब कुछ सरककर उसके पास आ रहा था, उसके हाथों तक, और उसके शरीर से गुज़रकर उसके मन तक, कुछ भी सहज नहीं हो रहा था...

वह जो पूर्ण था—साबत, सालिम, उसमें से मृत्यु ने एक टुकड़ा तोड़ लिया था, दिलीप राय की पत्नी को, और अब उसी खाली जगह को भरना था—मुक्ता से।

शादी का यह पैगाम, मुक्ता को लग रहा था, जैसे एक खाली जगह का पैगाम हो...

एक मर्द के मन का नहीं, केवल घर में खाली हुई एक जगह का...

उस घर से एक औरत आई थी—दिलीप राय की मां नहीं, कोई और औरत, कह रही थी—'वह तो ब्याह की बात ही नहीं सुनता था, जैसे वैराग धारण कर लिया हो...बड़ी मुश्किल से मां ने मनाया है...'

और यह, मुक्ता को लगा, मर्द के मन का नहीं, घर में खाली हो गई एक जगह का तकाज़ा है...

एक गढ़े को भरने की तरह...

एक मोघले को बंद करने की तरह...

एक दरार को लीपने की तरह...

'पर मैं क्यों...मेरी जगह कोई भी हो सकती थी... कोई भी...' और मुक्ता के मन में आया—'वह जिधर नज़र करता, कुछ भी उसके लिए हाज़िर हो जाता... कुछ भी उसकी पहुंच के बाहर नहीं है...फिर सिर्फ मैं क्यों?'

और मुक्ता के मन में एक गर्म लकीर-सी खिंच गई—'उसने मुझे एक बार देखा है...शायद कुछ वही उसके मन में अटक गया हो...शायद...'

और शायद की कच्ची-सी आस को पकड़ते हुए मुक्ता उस जगह की ओर देखने लगती, जहां अभी अंधेरा था, और जहां से अभी कोई पहचान नहीं उठ रही थी...

३

कॉलेज वाली सहेली आई, एक खबर की तरह, और हंसती रही—'सो तू शहर की सबसे सुन्दर लड़की चुनी गई...मिस दिल्ली...'

मुक्ता का हाथ अंधेरे में चीज़ से टकराया, शायद एक सहारे से, एक हौसले से पूछना चाहा—'मेरा खयाल किसे आया, मां को या खुद उसे...या सिर्फ उसे, जो रिश्ते में उसकी बहन लगती है?' पर मुक्ता पूछ न सकी, हाथ अंधेरे में मूर्च्छित-सा हो गया...

और फिर अंधेरा और गाढ़ा हो गया...

वही औरत एक बार फिर आई, और मुक्ता की मां के पास बैठकर मुक्ता के भाग्य को सराहते हुए कहने लगी, ''एक तो इसके नसीब जाग जाएंगे, और दूसरे उस बिलखते हुए बच्चे के, जिसकी मां भगवान ने छीन ली...''

और जब मां शब्द मुक्ता के कुंआरे अंगों से टकराया, उसके सब अंग घबरा कर उसकी ओर देखने लगे...

लगा—उसके पैरों के नीचे उसकी अपनी कोई धरती नहीं है...कभी नहीं होगी...उसे सदा उस धरती पर खड़े होना पड़ेगा, जो किसी और के पैरों के लिए थी...

पत्नी कोई और थी, उसे सिर्फ उसकी जगह पर बैठना है...

मां कोई और थी, उसे सिर्फ उसकी जगह खड़ा होना है...

अंधेरा शायद बहुत गाढ़ा होकर ठोस दीवार के समान हो

गया। उसने दीवार से सिर को टिकाया तो विचार भी अंगों की तरह निढाल-से हो गए, 'किसी की जगह पर खड़ी हुई मैं जब नज़र आऊंगी—एक अजनबी, तब वह बच्चा जोर से रो पड़ेगा, इसका बाप भी...शायद ज़ोर से नहीं, धीरे से, मन में...'

और मुक्ता को लगने लगा—वह एक कब्र पर बैठ हुए कब्र के प्रेत जैसी हो जाएगी...

शादी के आए हुए पैगाम को 'हां' करनी थी, पर मुक्ता से हां न हुई, होंठ भिंच गए, पिता के आदेश के आगे भी, मां की मिन्नत के आगे भी...

और मुक्ता के होंठों पर जमी हुई खामोशी एक लकीर बनकर वहां तक फैल गई, जहां से शादी का पैगाम आया था...

४

तीन महीने बीत गए...

पर खामोशी की लकीर पर पांव रखकर आज फिर वह पैगाम आया, शायद मुक्ता के विचारों को टटोलता हुआ, और यह कहता हुआ कि बच्चा दादी के पास रहेगा, पंजाब में, यहां दिल्ली में नहीं।

मां ने मुक्ता पर गुस्सा करके उसकी खामोशी को तोड़ देना चाहा, खामोशी छिल-सी गई, मां के शब्दों से खुरच-सी गई, लेकिन टूटी नहीं...

मुक्ता के अपने मन में उसकी जीभ जैसे कट गई हो, वह बोल नहीं पा रही थी...

लगा—कभी नहीं बोला जाएगा, 'हां' कहने के लिए भी नहीं, 'नहीं' कहने के लिए भी नहीं...

जानती थी—दुनिया की कोई औरत नहीं होती, जो एक बार अपने अस्तित्व के पूरे ज़ोर से एक मर्द को आवाज़ देना न चाहती

हो... 'मैं भी चाहती हूं' वह सोचती, पर देखती—आवाज़ भीतर कहीं, गले से भी नीचे, अटककर खड़ी हो गई है।''

'शायद कभी होंठों पर नहीं आएगी'—वह मन में दिलीप राय को कल्पना कर देखने लगी, अपना बनाकर, मन के ज़ोर से भी, कानून के ज़ोर से भी, पर जहां जो कुछ पराया था, वह उसी तरह रहा...पराया भी और वर्जित भी...

और मुक्ता को लगा—कभी कुछ भी अपना नहीं होगा...न किसी रस्म के ज़ोर से, न कभी बरसों के ज़ोर से...

जहां तक भी मुक्ता देखती, दूर तक दिखाई देता—दिलीप राय जिस हैसियत का है, अगर कभी उसे ज़िंदगी का पहला चुनाव करना होता तो वह मुक्ता नहीं हो सकती थी...रास्ते में बहुत कुछ आ जाता—मोतियाखान की तंग गली, एक बेचारा-सा, सिर झुकाकर खड़ा हुआ मकान...मुन्शी पिता की अपनी हड्डियों के समान गुच्छा-सी हैसियत...और...और...

मुक्ता के लिए यह 'और' बहुत इधर थी, और दिलीप राय का अस्तित्व बहुत परे था...

अनेक 'और' उसके पास आकर खड़े हो गए, तो मुक्ता को लगा—जैसे वह और कुछ नहीं, सिर्फ किसी मरने वाली की कब्र पर डाली जाने वाली मिट्टी की आखिरी मुट्ठी है...

आखिरी मिट्ठी एक कब्र की लाश को ढकने का आखिरी जतन होता है, मुक्ता ने एक दार्शनिक की भांति सोचा, पर साथ ही उसे लगा—जैसे मिट्टी में रींगता हुआ एक कीड़ा उसके शरीर पर चढ़ रहा हो...उसके नंगे मांस को टटोलता, सूंघता और उसके लहू में से एक घूंट पीकर उसके मांस के साथ खेलता हुआ...

५

मुक्ता ने चौंककर अपनी ओर देखा—हे ईश्वर! क्या मेरे मन में मुझसे भी चोरी, उसने इतना प्यार कर लिया है कि मैं उन बरसों

को सह नहीं पा रही हूं जब वह मेरा नहीं था, किसी और क
था...किसी और का मर्द...किसी और के बच्चे का बाप...

और मुक्ता ने अपना होंठ दांतों से काट लिया– हे ईश्वर
क्या मरी हुई औरत का अस्तित्व भी मुझसे सहा नहीं जा रहा है?

और उसे लगा–जैसे इन सब महीनों की खामोशी और क
नहीं थी. सिर्फ एक गिला थी, उससे जो उसका था, सिर्फ उसक
और जिसने उससे मिलने से पहले उसके साथ बेवफाई की थी

मन एक लम्बी गुफा बन गया और उसमें से गुज़रती ह
मुक्ता को शादी का पैगाम देने वाला दिलीप कभी इतना अप
लगता रहा, जैसे होंठों की सांस से भी ज्यादा नज़दीक हो, और क
इतना पराया कि आंखों की पहचान से भी परे हो...

आज फिर एक रात आई, जब यह पैगाम फिर एक ब
जीती-जागती चीज़ की तरह उसे कमरे में आता हुआ लगा, औ
फिर उसकी चारपाई पर आकर उसकी बांह से लगकर उसके पा
सोता रहा...बहुत कोमल, सजीव और छोटी-छोटी सांस ले
हुआ...

सवेरे तड़के जैसे ही आंख खुली, मुक्ता को लगा–बहुत दि
बाद आज का दिन शांत है–शायद उसने दिलीप के बीते हुए व
को भी स्वीकार कर लिया है, और उसके बच्चे को भी...

'बच्चा दीदी के पास रहेगा...पंजाब में...यहां दिल्ली
नहीं...' मुक्ता चारपाई पर से उठकर अन्दर अपने कमरे की ओ
जाने लगी तो ये शब्द उसके पैरों में चुभ गए...ये शायद कल
वहीं बाहर आंगन के फर्श पर पड़े हुए थे...

लगा–जैसे पांवों से लहू बहने लगा हो...

आश्चर्य भी हुआ कि एक ही शब्द एक ही समय में सर्व
विपरीत अर्थ कैसे रखते हैं?–यही शब्द थे, कल इन्हें सुना था
मन को कुछ सुख देते हुए से लगे थे, झूठमूठ के 'मां' शब्द से उ
मुक्त करते हुए से, और दिलीप के बीते हुए वर्षों की गवाही को ह
समय देखने की विवशता से स्वतन्त्र करते हुए से...पर कल अ

ज के बीच कुछ घटित नहीं हुआ था, फिर भी ये शब्द आज
शे की किरचों की तरह, किसी और को नहीं, उसके अपने ही
न को छीलने लगे थे...

"मां हिपोक्रिट (बगुला भक्त) है...शायद सारी मध्य श्रेणी
ोक्रिट होती है..." मुक्ता के होंठों पर हंसी-सी आ गई। याद आ
था—कल मां ने ये शब्द सुने थे तो त्राहि-त्राहि कर उठी थी,
बच्चे को घर से दूर भेजकर बच्चे पर जुल्म किया जा रहा
..पर वह औरत चली गई तो उन्हीं होंठों से मां ने एक सुख की
न ली, कहने लगी, "चलो, यह भी अच्छा हुआ...सौतेले बच्चे
मने कोई आसान होते हैं? जान के जंजाल होते हैं..."

और मुक्ता को अपने प्रति एक तरह के सन्तोष का अनुभव
ा—'मैं कुछ भी हूं, लेकिन मां जैसी नहीं हूं। जो कुछ मन में है,
ा होंठों पर रखकर देख रही हूं... मेरा कल का चैन भी सच
—और आज की बेचैनी भी सच है...'

'हां' और 'नहीं', जैसे सचमुच दो इलाके हों—शायद
-दूसरे के दुश्मन इलाके, और मुक्ता दोनों सीमाओं के बीच की
ली जगह पर खड़ी रही हो...

पता था—बहुत देर तक इस जगह पर खड़े नहीं रहा जा
ता, पर पैर किसी भी तरफ नहीं उठ रहे थे...

यह 'हां' या 'नहीं' कह सकने वाली स्वतन्त्रता की विवशता
..

और इस जगह खड़े हुए मुक्ता को एक बार मां पर रश्क हो
या—जिसकी आंखों में अमीरी की ऐसी चकाचौंध है कि वही सच
और उसके सिवा जो कुछ भी अंधेरे में है, वह सच नहीं है...

'यह सुख सिर्फ एकक्षीय विचार की गुलामी का सुख होता
..जहां सब कुछ इकहरा होता है—रिश्ते का अर्थ भी इकहरा
र इन्सान के अस्तित्व का अर्थ भी इकहरा...' और ऐसा सोचते
मुक्ता को लगा कि कुछ भी हो, मां से रश्क करने का सुख मुझे
ां चाहिए...मेरी पहचान मेरी पीड़ा में है...

यह भी लगा कि किसी से कोई रिश्ता जब बाहरी चीज़ के सहारे खड़ा होता है—जैसे मज़हब के सहारे से या दौलत के सहारे से, या बने-बनाए ओर कतरे-ब्योंते कानून के सहारे से—उसे मन की पीड़ा का वरदान नहीं मिलता। गुलामी का सुख मिल सकता है पर स्वतन्त्रता की पीड़ा नहीं मिलती। वह सिर्फ तभी मिलती है, जब वह रिश्ता मन का होता है...और किसी भी सहारे के बिना खड़े होना चाहता है...सिर्फ अपने अस्तित्व के बल पर...

और अपने अस्तित्व की पीड़ा को पहचानते हुए मुक्ता अभी भी रास्ते की पहचान नहीं कर पा रही थी कि एक भयानक दुर्घटना घट गई—दिलीप राय के बच्चे की डिप्थीरिया से एक ही दिन में मृत्यु हो गई...

मृत्यु के भयानक वार ने मुक्ता की खामोशी को तोड़ दिया और उसने तड़पकर 'हां' कर दी, जैसे एक हारे हुए इलाके को उसकी बहुत आवश्यकता हो...

६

शादी का पैगाम, कुछ सिर झुकाकर, सोग के दिनों में गुज़रता रहा...मातम के कुछ दिन बीत गए तो उस पैगाम की बात हुई—रस्म हो, लेकिन बहुत साधारण-सी कोई चहल-पहल न हो।

वैसा ही हुआ—सिर्फ मुक्ता की मां ने कुछ रस्में जो अन्दर बैठकर की जा सकती थी, वे चुपके से कर लीं, और मुक्ता जब फेरों की अग्नि के पास से उठकर सवेरे के पहर में दिलीप राय के साथ उसके घर आई, कुछ थोड़ी-सी रस्में, जो अन्दर बैठकर की जा सकती थीं, दिलीप की मां ने कर लीं।

एक छोटी-सी रस्म थी—जो मुक्ता की रिश्ते में ननद लगने वाली लड़की ने अपने कोई एक बरस के बच्चे को मुक्ता की गोद में बिठाकर की, जिसके साथ दो-तीन औरतें वह परम्परागत गीत गाने लगीं, जो ऐसे अवसर पर नववधू से वंश को बढ़ाने की आशा

से गाया जाता है...

मुक्ता के सिर का पल्ला ज़रा नीचा-सा था, पर परम्परागत घूंघट जैसा नहीं था, उसने सिर झुकाकर गोद में पड़े हुए बच्चे को देखा—तो उसकी आंखें एक खौफ से फैल गईं...

लगा—किसी ने अचानक एक मरा हुआ बच्चा उसकी गोद में डाल दिया है...

गोद का बच्चा टुकर-टुकर देख रहा था—परन्तु निश्चल था। नये हाथ के स्पर्श से भी विचल नहीं हो रहा था...शायद मुक्ता की बांहों में पड़ी हुई लाल रंग की हाथी दांत की चूड़ियों को नये खिलौने की तरह देख रहा था...

दो-तीन औरतें वह गीत गा रही थीं, पर भरी हुई आवाज से...गीत के सारे अक्षर टूटे हुए पंखों की तरह हवा में हिलते रहे...

दिलीप राय की मां इस शुभ अवसर पर कोई अपशकुन नहीं करना चाहती थी, इसलिए आंखों का पानी आंखों में ही लौटा लिया—पर इस समय, पिछले दिनों हुई बच्चे की मौत, फिर जैसे ताज़ा होकर सब की आंखों के आगे आ गई...

एक हसरत भी कि आज के दिन उसी बच्चे को मुक्ता की गोद में डालना था...

मुक्ता ने, औरों की तरह, उस बच्चे की मौत नहीं देखी थी, पर इस समय सबसे ज्यादा उसे ही लगा—जैसे वही मरा हुआ बच्चा इस समय उसकी गोद में हो...

और उसे लगा—एक लाश है, जो शायद हमेशा उसकी गोद में पड़ी रहेगी...

७

पूरी रात की थकान थी, उनीदापन भी। दिलीप राय चाय का एक प्याला पीकर अपने कमरे में चले गए थे और बड़े कमरे में सिर्फ मुक्ता थी, या ब्याह के इस दिन के लिए आई हुई कुछ

मेहमान-रिश्तेदार औरतें। कोई रस्म करते समय जब मुक्ता व
गोद में डाले हुए बच्चे को उठा लिया गया तो मुक्ता ने थकी-थव
आंखों से एक बार कुसुम की ओर देखा। सिर्फ कुसुम थी, जि
मुक्ता इस घर में कुछ पहचानती थी। उसीने आज नये रिश्ते व
सबसे पहले संबोधन से मुक्ता को बुलाया था—'भाभी' कहकर

कुसुम ने दिलीप राय की मां की ओर देखा, कहा, "चाची
भाभी के लिए सारी रात का जागरण रहा होगा..." मां ने मुक्ता क
बड़े कमरे के सोफे से उठाते हुए कुसुम से कहा, "दिलीप के बराब
वाला कमरा खाली है। जा, भाभी को वहां ले जा, घड़ी दो घड़
आराम कर लेगी..."

कुसुम एक पल के लिए शायद किसी सोच में उतर गई, फि
कहने लगी, "भाभी! एक मिनट...मैं कमरा ठीक कर आऊं।"

बाकी कमरों में मेहमान थे। कुसुम ने जाकर देखा, सिर्फ वह
कमरा था, जिसमें किसी मेहमान को नहीं ठहराया गया था। कुसु
कमरे में गई और उलटे पैरों वापस आकर मुक्ता को उस कमरे
ले गई।

कुसुम ने कमरे में कुछ फल रखवाए, चाय रखवाई और फि
कमरे का दरवाज़ा भेड़कर जब चली गई तो मुक्ता, जो कमरे म
अकेली रह गई थी, खिड़की से पीछे के बगीचे की ओर देखने लगी।

बिलकुल बराबर वाले कमरे में दिलीप राय थे...बहुत
पास...पर पूरी एक दीवार की दूरी।

कुसुम ने ही उस कमरे के आगे से गुज़रते हुए बताया था,
"भाभी! आपका असल कमरा यह है..." और हंसते हुए मुक्ता के
कान के पास मुंह करके कहा था, "पर रात को असल कमरा
बनेगा..."

कमरा बगीचे से बिलकुल सटा हुआ होने के कारण बड़ी
ताज़ा हवा से भरा हुआ था। हवा में हलकी-सी महक थी। मुक्ता ने
बराबर के कमरे में सोए हुए दिलीप राय के अहसास को सांसों में
महसूस करना चाहा, पर लगा—वह अहसास अभी अजनबी है,

सांसों में महसूस नहीं हो रहा है—शायद बगीचे की हवा से भी ज्यादा अजनबी।

और मुक्ता, थकी हुई, कमरे के पलंग पर बैठने ही लगी थी कि अचानक खयाल आया—कुसुम अकेली एक मिनट के लिए इस कमरे में आई थी, मां ने कहा था, 'कमरा तैयार है', वह फिर भी अकेली आई थी!

और मुक्ता ने कमरे की चारों दीवारों की ओर देखा और उठकर कमरे की अलमारी खोली।

अलमारी खाली थी—सिर्फ एक तस्वीर थी, शीशे में जड़ी हुई, जो एक खाने में उलटी पड़ी हुई थी।

लगा—जो खयाल आया था, ठीक था। कुसुम को जरूर पता रहा होगा कि यह कमरा उस बच्चे का होता था।

कुसुम के मन की यह कोमल-सी जगह जैसे मुक्ता के हाथों को स्पर्श कर गई...उसने कांपते हुए हाथों से वह तस्वीर उठाई—देखा, बच्चे की तस्वीर थी, और जाना कि यह जरूर दीवार पर लगी रही होगी, जिसे अभी कुछ मिनट पहले ही कुसुम ने उतारकर अलमारी में रखा है।

मुक्ता ने फिर कमरे की दीवारों की ओर देखा। एक ओर एक उभरी हुई लकड़ी की पटटी थी, जिस पर लगी हुई कील बड़ी अकेली-सी, खाली-सी खड़ी हुई थी।

मुक्ता ने आह जैसी एक सांस ली और बांह ऊंची करके उस तस्वीर को फिर उस कील पर टांग दिया।

खिड़की से आने वाली हवा में नये पत्तों की महक थी, पर अचानक मुक्ता को लगा, जैसे बहुत दिनों के झड़े हुए और गलते हुए पत्तों की गंध भी हवा में हो।

पलंग पर लेटकर मुक्ता ने थककर आंखें मूंद लीं।

नींद की ऊंघ में मुक्ता को लगा कि कुछ आवाज़ें हैं, जो न जाने कहां से उसके कानों में आ रही हैं।

"यह लड़की तो पहली को भी मात करती है...शी इज़

रीअल ब्यूटी...मैं तैभी तो सोच रही थी, न घर न घराना, यह बा
कैसे बनी...लड़की तो अच्छी है, पर पैर अच्छे होने चाहिए... उध
बात चली, इधर लड़का जाता रहा..."

मुक्ता चौंककर उठ गई...घबराकर दीवारों की ओर देखा
फिर खिड़की की ओर...बाहर पेड़ों की ओर...जहां इस सम
बगीचे में घर आए मेहमान थे।

लगा—यह सब कुछ जो हवा में है, हवा में ही ठहर
रहेगा—शायद यहां, इस मिट्टी में उगकर पेड़ों की भांति फैल
जाएगा।

जो भी बातें हवा में थीं, मुक्ता ने पत्तों की सांय-सांय की तरह
सुनीं, पर कोई भी उदासी कानों को ऊपरी नहीं लग रही थी, जैसे य
आवाज़ें उसने पहले भी सुन रखी हों...अपने भीतर से...

घर में मौत की एक गंध थी, पर वह स्वाभाविक थी। मुक्त
को लगा—जो उससे भी बढ़कर है, वह कुछ और है, शायद घर मे
नहीं, उसके अपने अन्तर में है...

एक भय-सा आया—'सिफ मैं नहीं, शायद दिलीप राय भी
उस गंध को जानते हैं...और शायद...शायद किसी दिन वह मुझसे
बहुत नफरत लगें...'

८

रात आई...

यह अक्तूबर का महीना था, खुले मौसम का, पर रात ठंड क
एक कम्पन-सी लेकर आई।

कम्पन शायद मौसम का नहीं था, मुक्ता के मन के भय क
था, परवह गर्दन की नसों तक फैल रहा था।

बाहर, एक गर्माहट की और सुख की अनुभूति थी—कमरे के
दरवाज़ों और खिड़कियों पर वैलवैट के परदे थे, जिनका रंग
दीवारों के रंग के समान गंभीर था, इतना कि उनका अस्तित्व भी

दीवारों का भाग प्रतीत होता था। और फर्श पर बस कोई दो बालिश्त ऊंचा और चौकोर पलंग था, जो फर्श का ही एक उभरा हुआ अंग लगता था। रोशनी सिर्फ एक गोल लैम्प की थी...जो मोटे और सुलगते हुए कोयलों की शक्ल में थी—सुर्ख लाल। और बस—कमरे में और कोई चीज़ नहीं थी।

दिलीप राय की मां जब मुक्ता को अकेले इस कमरे में छोड़कर चली गई, मुकता ने दहकते हुए कमरे की गर्माइश को अपने अंगों में अनुभव किया; पर ठंड का जो कम्पन-सा उसकी गर्दन की नसों पर चढ़ रहा था, वह भी उसी तरह उसके अंगों में फैलता रहा।

देखा—कमरे में एक पलंग के सिवाय बैठने के लिए और कोई चीज़ नहीं है।

मुक्ता खड़ी रही।

खयाल आया—हर लड़की ब्याह की पहली रात जिस कमरे में दाखिल होती है, कभी उस कमरे का मालिक उसके स्वागत के लिए वहां नहीं होता।

और हर लड़की एक अजनबी कमरे में एक दखल-अंदाज़ी की तरह पांव रखती है।

और मुक्ता हैरान हुई—यह रिवाज है, पर शायद इस पर कभी किसी ने नहीं सोचा, इसलिए इसे कभी नहीं बदला।

कमरे की जलते हुए कोयलों जैसी लाल रोशनी, कमरे में फैली हुई नहीं थी, वह पलंग के एक ओर कोयलों के ढेर की तरह फर्श पर पड़ी हुई थी, इसलिए मुक्ता कुछ देर तक कमरे के एक कोने में बनी पत्थर की उस छोटी-सी रौंस को नहीं देख सकी, जिस पर एक तस्वीर पड़ी हुई थी। पर उसकी आंखें जब कमरे के अंधेरे से और एक जगह पर गुच्छा होकर पड़ी हुई रोशनी से परिचित हुईं तो उसने किसी किताब की तलाश में इधर-उधर देखा।

अपने-आप उस बिस्तर पर बैठना बहुत अजीब लगा, जो अभी तक उसका नहीं था और आज तक किसी ओर का था।

सोचा—कमरे में पड़ी हुई कोई किताब मिल जाए त
फर्श पर रोशनी के पास बैठकर किताब पढ़कर इन्तज़ार का
बिता लेगी।

वही कुछ स्वाभाविक हो सकता था...इस तरह कमरे म
रहना उसके लिए स्वाभाविक नहीं हो रहा था। इसलिए
किताब को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते जब वह कमरे को गौर से देखने लगी—
कोने में बनी हुई पत्थर की उस छोटी-सी रौंस को देखा, जि
एक तस्वीर पड़ी हुई थी...

पास गई, देखा—तस्वीर बच्चे की थी, और उसकी मां व

कमरा नहीं, कमरे में अपना-आप बिलकुल अजनबी ल
लगा।

बाहर हवा शायद तेज़ हो गई थी—कमरे की खिड़कियां
थीं, पर दीवारों के साथ लगकर कुछ तेज़-तेज़ सांस लेती लग
थी।

दरवाज़े के परदे ने भी एक गहरी सांस ली और परों तक
गया—मुक्ता ने देखा, दिलीप राय कमरे में आए हैं।

मुक्ता, शायद, दिन में देखी हुई मुक्ता से भी इस स
अधिक सुन्दर लग रही थी। दिलीप राय उसकी ओर देखते
गए, फिर संभले, धीमे से मुस्कराए, और पास को होकर कहने ल
"इसी तरह खड़ी रही? थक नहीं गई?"

बिजली के कोयलों में से जैसे एक छोटी-सी चिनगारी उ
मुक्ता ने कहना चाहा—'कमरे ने बैठने के लिए कहा ही नहीं...'
वह कह न सकी।

बिजली के कोयले एकसार जलते रहे। मुक्ता भी...

दिलीप राय ने बैठने के लिए, पलंग के पास आकर, मुक्ता
कंधों पर अपनी बांह रखीऔर पलंग की पट्टी के पास आकर रु
गई मुक्ता ने कहा, "मेरी पसन्द पर रश्क आया है या नहीं?

मुक्ता के होंठ ज़रा-से मुस्कराए। दिलीप राय का प्रश
सीधा था, उनके मन से जुड़ा हुआ, पर मुक्ता को लगा, जैसे ब

क्या खोया और क्या पाया का कुछ हिसाब-सा लगा रहे हों।

मुंह से निकला, ''बहुत उदास हो?''

ये मुक्ता के पहले शब्द थे, जो दिलीप राय के सामने मुंह से निकले।

वह कुछ चौंक-से गए, ''उदास...?''

मुक्ता ने कमरे के उस कोने की ओर देखा, जहां बच्चे की और उसकी मां की तस्वीर थी।

पलंग की पट्टी के पास खड़े दिलीप राय की इस समय उधर पीठ थी, उन्होंने मुक्ता की दृष्टि की दिशा में गर्दन मोड़कर देखा।

फिर चुप से हो गए। शायद सोच नहीं सके थे कि आज की रात की पहली बात अतीत से जुड़ी हुई होगी।

मुक्ता के भीतर से शीत का एक कम्पन उठकर उसकी उंगलियों के पोरों तक फैल गया...और उसका हाथ, जो ठंडा हो गया था, एक विवशता की सी दशा में, दिलीप राय के पहलू से छू गया—शायद किसी गर्माहट की खोज करता हुआ।

दिलीप राय ने मुक्ता को पूरी बांह में लेकर अपने से सटा लिया।

आंखें बन्द-सी हो गईं। मुक्ता की भी।

मुक्ता को लगा—जैसे वे दोनों, मौत की ठंड से बचने के प्रयत्न में ज़िन्दा मांस क़ी गर्माहट खोज रहे हों।

बिजली को कोयलों की शक्ल में बनी हुई, हांड़ियों के स्विच पलंग की पट्टी पर इस तरह लगे हुए थे कि जितने कोयले चाहें, बुझाए जा सकते थे। दिलीप राय ने कुछ स्विच दबाकर केवल एक कोयला जलता रहने दिया, बाकी बुझा दिए।

सचमुच एक ऐसी ठंड थी—जो दोनों के अस्तित्व को किसी जगह अपने में लपेट रही थी, और जिसे केवल एक-दूसरे की आग का सेंक चाहिए था।

रात ऐसे बीती कि मांस के ठंडे हाथ सारी रात मांस की कांगड़ी सेंकते रहे—रात का अन्तिम पंहर आया, रात की गर्माइश

से भरा हुआ—और बिस्तर की सफेद चादर पर दो शरीर जल-जलकर बुझे हुए से राख के गर्म ढेरों की तरह पड़े हुए थे।

सवेरे का उजाला शायद चेतना होता है—मुक्ता की आंख खुली तो पलंग के दो सिरे—एक दूसरे से बहुत दूर लगे, इतने कि उसने घबराकर बांह फैलाई, दिलीप राय की बांह थामने के लिए, पलंग के दूसरे सिरे तक पहुंचने के लिए, पर देखा—दोनों के बीच एक बच्चे की लाश पड़ी हुई है, जिसके ऊपर से बांह नहीं ले जा सकती।

दिलीप राय की ज़िन्दगी में मुक्ता पहली औरत नहीं थी, पर मुक्ता की ज़िन्दगी में दिलीप राय पहला मर्द था, और पहले मर्द के साथ बीती पहली रात मुक्ता के लिए भयानकता की सीमा तक सुन्दर थी—एक सम्पूर्ण अस्तित्व की, एक सम्पूर्ण अस्तित्व के लिए जागी हुई प्यास...इतनी कि सवेरे के उजाले में वह दिलीप राय की ओर एकटक देखती रही। लगा—अभी एक घूंट पानी भी उसने होंठों से लगाकर नहीं देखा है और उसके होंठ बहुत प्यासे हैं।

पर दिलीप राय को इससे विपरीत एहसास हुआ—एक उस प्यास की तृप्ति का, जो पहले कभी उन्होंने अनुभव नहीं की थी। औरत को पहले भी शरीर से लगाया था, पर लगा—आज जैसी रात का पहले कभी उन्होंने अपने शरीर से स्पर्श नहीं किया। उन्होंने भी सवेरे के उजाले में मुक्ता को हैरानी से देखा।

पर दोनों ने अपनी हैरानी के अर्थ समझे, दूसरे की हैरानी के नहीं। इसलिए चाय की मेज़ पर एक अजीब खामोशी छा गई। इतनी, कि खामोशी जैसे आंखों से देखी जा सकने वाली चीज़ हो और जिससे घबराकर दोनों ने आंखें परे कर लीं।

दिलीप राय काम पर चले गए। घर के मेहमानों में से तीन रात की गाड़ी से चले गए थे, और एक अभी सवेरे की गाड़ी से। मां

अभी दो दिन और रहने वाली थीं, पर कुसुम आज तीसरे पहर वापस बम्बई जा रही थी। इसलिए मुक्ता अकेली हुई, तो कुसुम उससे छोटे-छोटे मज़ाक करती रही, फिर अचानक गम्भीर होकर कहने लगी, ''भाभी! एक बात की मैं आपसे माफी चाहती हूं...कल मैंने बहुत चाहा था कि घर में लगी हुई कुछ तस्वीरें उतार दूं...चाची मान गई थीं, पर भाई साहब नहीं माने...मैं जानती हूं—एक तस्वीर उनके कमरे में है...रात को...आपकी पहली रात को भी...''

मुक्ता ने आंखें झुका लीं, धीरे से कहा, ''मैं जानती हूं—कल तुम। छोटे कमरे से एक तस्वीर उतारकर अलमारी में रख दी ।—पर क्यों?...मैंने फिर वहीं टांग दी थी।''

दोपहर को मां ने उस अलमारी की चाभी मुक्ता को दी, जिसमें उसके लिए खरीदे हुए कपड़े रखे हुए थे, और वह सूटकेस भी, जो मुक्ता अपने साथ लाई थी। कुसुम उसके साथ सूटकेस के कपड़े अलमारी में रखवाती रही। उसीने बताया, ''पहली भाभी के कपड़े भी बहुत बढ़िया नये पड़े हुए हैं...पर चाची ने उनमें से कोई कपड़ा आपकी अलमारी में नहीं रखवाया, इसलिए कि शायद आपको यह बात अच्छी न लगे।''

अचानक मुक्ता को लगा—किसी ने धीरे से उसके कंधे पर हाथ रखा है...यह भी महसूस हुआ, यह हाथ कपड़ों के उस बन्द ट्रंक में से निकलकर आया है, जो घर की मां ने न जाने कहां—शायद कुछ ट्रंकों के नीचे—दबाकर रख दिया है।

मुक्ता के हाथ अलमारी में कपड़े रखते हुए ठिठक गए।

हाथ का स्पर्श, कंधे से नीचे को उतरता हुआ, रीढ़ की हड्डी में फैल गया।

मुक्ता ने फटी-फटी आंखों से अलमारी की ओर देखा...यह सोने के कमरे की दूसरी अलमारी थी, उस पहली के नाप की ही, जिसमें से सवेरे दिलीप राय ने अपने कपड़े निकाले थे।

पूछने की आवश्यकता नहीं थी, दिखाई दे रहा था कि यह

अलमारी उसी की थी, जिसके कपड़े इसमें से निकालकर अ
किसी ट्रंक में बन्द कर दिए गए थे।

चीज़ों में शायद बरतने वाले का कुछ सदा के लिए समा जात
है—लोहे में भी, लकड़ी में भी, मुक्ता को अलमारी में से ए
हलकी-सी गंध आई।

एक लम्बी सांस भरकर देखा, पर जान नहीं सकी कि य
गंध किसी के हाथों की थी, या लकड़ी में समाई हुई किसी इत्र
फुलेल की।

होठों के पास सोच की एक लकीर-सी खिंच गई—अग
लकड़ी और लोहे में कोई गंध समाई रह सकती है तो उस बदन म
भी जरूर होगी, जो रोज़ उसे बांहों में लपेटकर रखता था।

पिछली रात को याद में लाकर, मुक्ता ने दिलीप राय के बद
को जैसे फिर छुआ, बांह से लिपटकर एक गहरी सांस भरी, प
कुछ याद नहीं आया।

"शायद शरीर की जलती हुई आग के समय केवल आग की
गंध होती है, और किसी चीज़ की नहीं...और शायद और सब कुछ
उसमें भस्म हो जाता है!"

मुक्ता के विचार को कुसुम ने तोड़ दिया। पूछ रही थी,
"भाभी! क्या सोच रही है?"

मुक्ता ने पहली बार जाना—कुछ विचार केवल किसी गंध के
समान होते हैं...हाथ से पकड़कर किसी को दिखाए नहीं जा
सकते—हर समय होते भी नहीं। मेह बरसने के समय स्वयं ही आ
जाते हैं, घरों के कोनों में गुच्छा-से होकर बैठ जाते हैं, और फिर
धूप निकलने पर न जाने कहां चले जाते हैं।

"भाई साहब को कच्चे कीमे के कबाब बहुत पसन्द है।"
एक फिसलने रेशम की साड़ी को तह करते हुए कुसुम ने अचानक
कहा।

"कच्चे कीमे के?" मुक्ता ने चौंककर कुसुम की ओर देखा।

कुसुम बताने लगी, "वह जब बम्बई आते हैं, मैं उन्हें
बनाकर खिलाया करती हूं, थोड़ी मेहनत लगती है—पहली भाभी

कभी नहीं बनाती थीं।"

"तुम मुझे सिखा दो।" मुक्ता ने कहा, और उसके मन में एक हंसी-सी आ गई। याद आया—मां कई बार कहा करती है कि मर्द का मन जीभ में होता है।

"मैं आपको कागज़ पर सारा तरीका लिख देती हूं, मुश्किल नहीं है, सिर्फ ज़रा मेहनत पड़ती है।"

और कुसुम जब कागज़ पर लहसन का, बड़ी इलायची का और अंडों की ज़र्दी का हिसाब लिख रही थी, मुक्ता को लगा—जैसे वह एक अधेड़ औरत की तरह किसी सयाने से वशीकरण मंत्र लिखवा रही हो।

कुसुम लिखने के साथ-साथ जबानी भी बता रही थी कि कैसे कच्चे कीमे को पहले सिलवट्टे से पीसना होता हे, और साथ ही हंस भी रही थी, "पर भाई साहब को तो खाते समय पता ही नहीं लगेगा कि क्या खा रहे हैं। वह तो भाभी! बस, आपको ही देखते रहेंगे...देखा था, सवेरे चाय के समय, वह बस आपको ही देखे जा रहे थे...चाची भी भीतर जाकर हंसती रही थीं।"

मुक्ता को खयाल आया—सवेरे वह भी तो उनकी ओर देखती रही थी...कुसुम ने यह भी देखा होगा, मां ने भी।

और विचार उधर चला गया—जिधर रात को सोने के कमरे के कोने में एक तस्वीर पड़ी हुई थी, और जो सारी रात उसे देखती रही थी...और जिसने सारी रात आंखें नहीं झपकाई थीं।

१०

गले के पास जैसे आवाज़ नहीं थी...

पर बाकी सब अंगों के पास थी, केवल अंगों को सुन पड़ने वाली।

दूसरी रात आई, पर उसे पहली के बाद दूसरी कहना भी जैसे

उसका अपमान हो।

दिलीप राय ने महसूस किया—यह रात भी पहली है—न
और कुंआरी।

एक आश्चर्य मन में उठा—क्या हर रात का पहली बा
आना संभव है? आगे भी संभव होगा?

समझ में नहीं आ रहा था कि इस कोमल-सी, और रेशम व
गुच्छे जैसी लड़की के पास क्या है, जिसके अन्दर उनका शरी
रेशम के कीड़े की तरह लिपटता जा रहा है!

—नहीं, उन्हें लगा—कुछ है, जो वह सब कुछ देने के बाद भ
अपने पास रख लेती है, बचा लेती है, और जिसे पाने के लिए, पूण
सन्तुष्टि में अलसाया हुआ शरीर फिर उसकी ओर देखता है
उसकी ओर बढ़ता है...

मुक्ता ने इस रात को कुछ जाना, पर दिलीप राय के अर्थों म
नहीं, बिलकुल अपने अर्थों में, बड़े निजी अर्थों में—कि रात की ये
घड़ियां हवन की आग की तरह जलती हैं और उसमें, जो कुछ भी
दिलीप राय का उससे अलग है, अकेला है, वह सब हवन की
सामग्री की तरह भस्म हो जाता है।

और जो 'सच' बाकी रह जाता है, वह केवल आग है...

मुक्ता ने यह भी जाना—कि हर नया दिन उस पाले से
ठिठुरता हुआ दिन होगा, जिसमें घर के छोटे-बड़े काम उन
छिपटियों-तिनकों को इकट्ठा करने के समान होंगे, जिनके आसरे
पर यह रात की आग जलानी होगी...

दिन के पाले से घबराकर...

अपने-अपने अकेलेपन से घबराकर...

और शायद हमेशा...सारी उम्र; क्योंकि आज भी रात के
चौथे पहर में मुक्ता को वही अनुभूति हुई कि पलंग के दो सिसरे
एक-दूसरे से बहुत दूर हैं, इतने कि एक सिरे की ओर सोई हुई
मुक्ता का दूसरे सिरे पर सोए हुए दिलीप राय तक हाथ नहीं पहुंच
रहा है...

आज इस चौथे पहर के बाद मुक्ता को नींद नहीं आई। अभी झुटपुटा ही था, जब वह उठी और घर के पीछे बगीचे में चली गई। हर बूटे को, हर टहनी को हाथ से छुआ, जैसे उसे पत्ते-पत्ते की पहचान करनी हो।

और भोर के प्रथम प्रकाश में मुक्ता ने कुछ फूल और पत्तियां तोड़ीं, पानी के एक गिलास में उन्हें तरतीब से सजाया, और कमरे में लौट आई। कमरे में—बस, फर्श था, और पलंग, इसलिए फूलों को रखने के लिए केवल एक ही जगह थी, जहां दृष्टि पड़ी—दीवार के कोने वाली पत्थर की वह रौंस, जहां वह तस्वीर पड़ी हुई थी, इसलिए मुक्ता ने वह फूल भी तस्वीर के पास ही रख दिए।

मुक्ता ने जब फूल तोड़े थे, उसे तस्वीर का खयाल नहीं था, पर कमरे में आई तो उस तस्वीर ने जैसे वह फूल मांग लिए...

वह नहीं सोचना चाहती थी, लेकिन फूल तस्वीर के पास रख दिए तो सोचती ही गई—कुछ फूल सिर्फ किसी कब्र पर चढ़ाने के लिए उगते हैं...शायद मैं भी...

१५

इस समय तक मुक्ता का सारा चिन्तन—सीधा-सा, साधारण, और उस औरत की मृत्यु से जुड़ा हुआ था, जिसकी मृत्यु के बाद उसके मर्द को मुक्ता ने अपना मर्द बना लिया था।

पर जिस समय सवेरे के नाश्ते की चाय मेज़ पर रख दी गई और दिलीप राय अपने कमरे में से काम पर जाने के लिए तैयार होकर आए—तो मुक्ता का सारा चिन्तन जैसे एकाएकी रास्ते से लौट गया...

अचानक उस मोड़ पर आ गया, जहां से एक नया रास्ता भी, न जाने किधर जाने वाला, उसके पांवों के आगे आ गया हो...

आज दिलीप राय ने मुक्ता की ओर देखा था, पर बिलकुल उस तरह, जिस तरह चाय के प्याले की तरफ, या उबले हुए अंडों

की तरफ।

दृष्टि में क्षण-भर का सम्बन्ध था, इससे अधिक कुछ नहीं...

एक ठण्डी-सी लकीर मुक्ता के कंधों से उतरकर पीठ की हड्डी में फैल गई।

आज कमरे में कुसुम भी नहीं थी, और मां भी नहीं, इसलिए मुक्ता ने कुछ निस्संकोच होकर कई बार दृष्टि भरकर दिलीप राय की ओर देखा—एक तना हुआ शरीर, तराशे हुए नक्श, पर जिस सबसे हर चीज़ एक फासले पर होने का एहसास देती हो।

पहने हुए कपड़े भी—अंगों के निकट होकर खड़े हुए, लेकिन अंगों के स्पर्श से दूर...

अचानक हाथ में एक कागज़ लिए हुए सेक्रेटरी कमरे में आया—"सर! यह तार..."

दिलीप राय ने निगाह उठाकर उधर देखा और उधर की आवाज़ परे, और जहां थी, वहीं रुक गई...

"दफ्तर में बैठो," दिलीप राय ने धीमे स्वर में कहा, और केतली में से गर्म चाय प्याले में डाली।

"सर!..." एक बार उधर की आवाज़ फिर उभरी, शायद काम के अत्यन्त आवश्यक होने का आग्रह था, या शायद किसी बड़े नुकसान का।

दिलीप राय ने कहा कुछ नहीं, सिर्फ उधर देखा—शायद जो पहले कहा था, वह अभी भी वहीं हवा में ठहरा हुआ था, और वही आगे होकर सेक्रेटरी के हाथों से टकरा गया। वह उन्हीं पैरों पीछे चला गया—बाहर वाले, घर के अन्तिम सिरे पर बने हुए उस कमरे में, जो नेहरू प्लेस वाले दफ्तर का एक छोटा-सा टुकड़ा घर में भी था, दफ्तर के समय से हटकर और अलग...

मुक्ता को लगा—दिलीप राय ने घर के समय का एक टुकड़ा, जैसे अभी उसके सामने, काम के समय से तोड़कर कमरे में रखा है।

रगों में भय की एक हलकी-सी लकीर फिर गई। इसलिए

नहीं कि दिलीप राय को घर के एकांत में कामों का दखल पसन्द नहीं था, सिर्फ इसलिए कि समय के इस टुकड़े को, उन्होंने जैसे एक ठण्डे चाकू से चीरकर अलग किया हो...

...एक सामर्थ्य—पर लोहे की धार के धार के समान तीक्ष्ण और ठण्डी...

दिलीप राय उठकर कमरे से जाने लगे तो एक नज़र मुक्ता की ओर देखा, पूछा, "कोई चीज़ चाहिए?"

मुक्ता के होंठों के पास एक मुस्कराहट उभरी, जैसे 'नहीं' शब्द उभरा हो...और दिलीप राय जब कमरे से चले गए, मुक्ता को लगा—उनका कमरे में होना और कमरें से जाना भी उनके अधीन है, आज्ञा में बंधा हुआ...

धरती की ग्रैविटी की तरह...

और मुक्ता को पहली बार लगा—एक और राह भी है, जो एक और कब्र की ओर जाती है...न जाने किसकी—न जाने कहां...

पर सवेरे की वह अनुभूति मन में और गहरी उतर गई—कुछ फूल सिर्फ किसी कब्र पर चढ़ने के लिए उगते हैं...शायद मैं भी...

१२

पैर, अचेत-से, सोने के कमरे की ओर मुड़े...

पर वह कमरे के दरवाज़े के पास पहुंचकर ठिठक गई—कमरा जैसे अपना न हो, किसी और का हो...

आंखों में पलंग की पहचान थी, और पलंग के पास पड़े हुए बिजली के बुझे हुए कोयलों की भी, पर कमरे की एक ठण्डी-सी गंध थी—जो अजनबी थी...

मन में बीती हुई रात सुलगी, और उसका सारा सेंक जाना-पहचाना लगा, पर ऐसे, जैसे एक पुरातन घटना हो—वर्तमान से टूटी हुई...

वर्तमान, सिकुड़कर, कमरे की दहलीज़ों में बैठा हुआ
और कमरे के अन्दर की ओर इस तरह झांकता हुआ, जैसे अ
सिर्फ इतिहास के खण्डहर हों...

मुक्ता ने इस अचम्भे को पैरों के तलवों तक महसूस कि
लगा—शायद हर रात दिन की लौ का स्पर्श पाते ही इतिहास
खण्डहर बन जाया करेगी, और हर दिन वह वर्तमान होगा
कमरे से बाहर होगा...

फर्श का या दीवार का सहारा काफी नहीं था। मुक्ता को
ऐसा सहारा चाहिए था, जो दहलीज़ में खड़े हुए उसके वर्तमान
भीतर कमरे में ले जाए, कमरे की हर चीज़ से जोड़ दे, दिलीप
की अनुपस्थिति से भी...

सहारे का एक तार-सा हाथ में आया—याद आया, ब्याह
रस्म के लिए उसके मां-बाप को अपना घर दिलीप राय के स्वा
के लिए बहुत छोटा लगा था, अपने अस्तित्व पर स
शरमाता-सा, और अपने निम्न मध्यवर्गीय विचार की भ
सहमकर खड़ा हुआ, और उन्होंने घबराकर सन्देश भिजवाया
कि यह रस्म बाहर किसी और स्थान पर की जा सकती है.

घर के एक मित्र ने भी बताया था कि अब आलीशान होट
में, हवन की अग्नि के लिए भी, किराये के कमरे बन गए है

तब मुक्ता को लगा था—जैसे किसी भी घर की ज़मीन उ
पांवों के नीचे नहीं है...

आंखों के आगे शून्य आ गया था—जो किराये के कमरे
लेकर किराये के रिश्ते तक फैलता दिखाई दे रहा था...

पर उस क्षण मुक्ता के मन को दिलीप राय ने जैसे हाथ दे
बचा लिया था। वापसी सन्देश भेजा था—यह रस्म उसी घर
होगी, बाहर कहीं नहीं।

और विवाह-संस्कार वाली रात को दिलीप राय
जयमाला पहनाते हुए मुक्ता की आंखों में वह स्वागत भी भर अ
था, जो केवल उसकी ओर से नहीं था, घर के फर्शों की उखड़ी

और दरज़ों वाली ईंटों की ओर से भी था...

आज, इस घड़ी, उस बीती हुई घड़ी का सहारा लेते हुए मुक्ता ने दिलीप राय के कमरे से जुड़ना चाहा—उसके पास जाकर, उसकी आत्मा को हाथों से छूकर...अपना बनाकर...

और वह पांवों पर ज़ोर-सा डालते हुए पलंग के पास आई

पर पैर, पलंग के पाये में अटक गए—एक खयाल आया, जो पहले नहीं आया था—रात को जिस समय शरीर का शरीर पर अधिकार होता हे, क्या वह अधिकार सचमुच का होता है?

लगा—दिलीप राय का वजूद उसके लिए पूरी धरती बन जाता है, उत्तरी ध्रुव से लेकर दक्षिणी ध्रुव तक—जिसके निर्जनों में वह खो जाती है, और जिसकी आबादियों में वह बस जाती है, और वह मीलों पर मील फलांगने पर भी धरती की थाह नहीं पा सकती...हाथ एक अनन्त में भटकते रह जाते हैं...

पर वह, दिलीप राय, कभी भी उसे धरती की तरह नहीं ढूंढ़ते, वह हमेशा एक नपी-तुली चीज़ की तरह उसे अंगों में संभाल लेते हैं, चाहें तो बांहों में समेट लेते हैं, चाहें तो परे एक ओर धर देते हैं...

आंखों में पानी भर आया, लगा—उसका अस्तित्व इतना छोटा है, सीमित कि आंखों के पानी में भी डूब सकता है...

और मुक्ता को लगा—किसी और की नहीं, उसकी अपनी कब्र है, कहीं बनी हुई, जिसपर चढ़ाए जाने के लिए वह फूल की तरह उगी है...

और मुक्ता को लगा—किसी और की नहीं, उसकी अपनी कब्र है, कहीं बनी हुई, जिसपर चढ़ाए जाने के लिए वह फूल की तरह उगी है...

१३

मां घर में थी तो मुक्ता को रसोई में जाना सहज नहीं लग
था। उसे लगा था, मां सोचेगी कि मैं घर का सब कुछ अपने हाथों म
ले रही हूं, बहुत जल्दी, इसलिए जो कुछ जिसके हवाले था, उसी
तरह रहने दिया।

वैसे भी, अभी तक उसने दिलीप राय की पसन्द या नापसन्द
को नहीं जाना था, सिवाय इसके कि हर दोपहर को और हर शाम
स्टीम की हुई सब्ज़ियों की एक डिश ज़रूर बनती थी, जो मां ने
कभी नहीं खाई थी, शायद पसन्द नहीं थी, पर वह मेज़ पर जरूरी
परोसी जाती थी, जिससे लगता था कि वह दिलीप राय के खाने क
एक जरूरी हिस्सा बनी हुई है।

मां कोई बीस दिन बाद वापस पंजाब चली गई तो मुक्ता ने
उसी शाम कुसुम का लिखकर दिया हुआ कागज़ निकाला और
पहली बार रसोई में गई। उस दिन मुक्ता ने कच्चे कीमे के कबाब
बनाए।

संध्या समय, दिलीप राय ने हर रोज़ की तरह अपने लिए
स्कॉच व्हिसकी का गिलास बनाया और मुक्ता के लिए गिलास मे
सेबों का रस डाला तो उस समय मुक्ता ने कुछ झिझकते हुए कबाब
की प्लेट मेज़ पर रख दी।

घर में यह उसका पहला प्रयत्न था, इसलिए यह झिझक कुछ
और ही तरह की थी, और इससे बचने के लिए उसने सेबों के रस
वाले गिलास को हाथ में लेकर एक घूंट भरा भी, पर गिलास को
होंठों से हटाया नहीं,—शायद चेहरे को थोड़ी-सी ओट की
आवश्यकता थी, भले ही वह गिलास की गोलाई के तीन इंच की

ओर ही क्यों न हो...

"अच्छा..." दिलीप राय ने कबाब के स्वाद को पहचानते हुए धीरे से कहा और फिर एक नज़र मुक्ता की ओर देखा।

मुक्ता का कुछ मुस्करा देना स्वाभाविक था, पर अपने होंठों में सिमटती हुई सी यह मुस्कराहट भी मुक्ता को स्वाभाविक नहीं लगी। लगा—कबाब की प्लेट का तो पता नहीं, पर उसने अपने होंठों की मुस्कराहट एक रिश्वत की तरह दी है...

मुक्ता को आंखें—शर्मिन्दा-सी—नीचे फर्श की ओर देखने लगीं...

फर्श के सफेद सीमेण्ट में मिले हुए पत्थर के छोटे और काले टुकड़े आंखों के आगे रेंगने लगे...

मन में एक सहम-सा आया—यह रिश्वत, जो आज होंठों पर एक मुस्कराहट बनकर आई है, कभी शब्द बनकर भी आ सकती है...और मुक्ता को किसी से नहीं, अपने होंठों से एक भय-सा आ गया...

पर इस भय में से एक और अलग प्रकार का भय उभरा—नहीं, दिलीप राय के सामने उसके होंठ शब्दों की रिश्वत नहीं दे सकेंगे, वह केवल घबराकर, किसी दिन, किसी भी घड़ी, सिसक उठेंगे...और घर की हवा में उस गुनाह की स्वीकृति फैल जाएगी, जो अभी केवल उसके मन में दबा हुआ है...

एक संकोच था, मुक्ता की आंखें ऊपर नहीं उठ रही थी। दिलीप राय ने संकोच को समझा, पर संकोच की भयानकता को नहीं। कहा, 'मिस दिल्ली के हाथों के बने कबाब भी मिलेंगे, यह नहीं सोचा था..."

मन के सेंक से होंठ भी पिघले, और दिलीप राय ने निकट आकर मुक्ता के होंठों को छुआ...

महक व्हिस्की की भी थी, भुने हुए कबाब की भी, और दिलीप राय की सांसों की भी—मुक्ता महक में भीग गई...

मन गीला हो गया तो मुक्ता को लगा—जैसे आंखों का कर्म

आज मन के हिस्से में आ गया हो...

"मिस दिल्ली..." दिलीप राय के होंठों के पास एक हल्की-सी शोखी आई...

"कुसुम ने बताया था?" मुक्ता ने धीरे से पूछा।

"क्या?"

"कि मिस दिल्ली बनाना चाहती थी?"

"हां..."

"पर बन नहीं सकी..."

"बन सकती थी...मुश्किल नहीं था अन्दर थी, घर में...

"घर से इजाजत नहीं मिली...मैं जानता हूं..."

"फिर जो बन नहीं सकी..." मुक्ता कुछ कहते-कहते चुप हो गई। कहना चाहती थी—फिर मिस दिल्ली क्यों कहते हो? पहली रात भी यही कहा था...

मुक्ता को पहली रात भी इस शब्द में से एक हलके से व्यंग्य का अनुभव हुआ था, आज भी हुआ, पर पूछना चाहकर भी पूछ नहीं सकी।

लगा—हवन की अग्नि, हाथों में एक संबंध थमा सकती है पर उसकी लौ मन के अंधेरे कोनों तक कभी नहीं पहुंच सकती और वह कोने किसी भी संबंध की सीमा के बाहर रह जाते हैं...

दिलीप राय मुक्ता के बिलकुल पास आकर हंस-से पड़े, बोले, "अगर अखबारों में छपता, क्या सिर्फ तभी माना जाता? कोई वह खबर भी सच्ची हो सकती है, जो अखबारों के बाहर रह जाए..."

"क्या मतलब?"

"फार्म भरा जाता, तो आखिर यह फैसला भी किसी आदमी ने ही करना था न..."

"हां, जो कोई भी जज होता..."

"कोई जज या ज्यूरी—पर वह मैं भी हो सकता हूं...क्या यह काफी नहीं?"

मुक्ता ने पूरे मन से मुस्कराना चाहा, लगा—अगर यह अर्थ केवल इतने ही हैं, सीधे और सीमित, तो उसके लिए इनका अखबारों के बाहर रह जाना उससे भी अधिक गम्भीर है, जितना कि अखबारों के अन्दर आ जाने से होता...यह खबर सिर्फ कुछ दिनों के लिए होती, और यह जो अखबारों के बाहर है, उम्र-भर के लिए हो सकती है...

पर मुक्ता चाहकर भी मुस्करा न सकी, लगा—इन्सान के मन को, अखबार की तरह, साधारण आंखों से नहीं पढ़ा जा सकता...

''कल इतवार है, मिस दिल्ली ने, मेरा खयाल है, पूरी दिल्ली नहीं देखी होगी। सवेरे, बहुत तड़के, दूर तक जाया जा सकता है,...एक लांग ड्राइव...'' दिलीप राय ने कहा तो मुक्ता का मन सहज हो गया।

यह आज पहला दिन था, जब दिलीप राय ने मुक्ता को अपने साथ कहीं चलने के लिए कहा था। वह पिछले दिनों में तीन बार घर के बाहर गई थी, अपने माता-पिता से मिलने के लिए, तो तीनों बार घर का ड्राइवर उसे सवेरे के समय गाड़ी में ले गया था, संध्या समय ले आया था। दिलीप राय न वहां उसके साथ गए थे, न और कहीं साथ चलने के लिए उससे कहा था। इसका कारण मुक्ता ने अपने मन में ही खोज लिया था—कि घर की दुर्घटनाओं के बाद यही स्वाभाविक हो सकता था। आज उन्होंने सवेरे एक लाग ड्राइव के लिए कहा तो मुक्ता को लगा—जैसे वह दुर्घटनाओं की सीमा को पार करके कुछ इधर उसकी ओर आ रहे हों...

१४

सवेरे बहुत तड़के उठना था, दिलीप राय ने चाय की थरमस और पनीर, बिस्कुट जैसी कुछ चीज़ें साथ रखने के लिए कहा था,

इसलिए मुक्ता की रात के पिछले पहर में आंख खुल गई तो
नींद नहीं आई।

यह रात के पिछले पहर का जाग उठना मुक्ता के मन
ठण्डी ओस की तरह गिरने लगा—क्या वह सचमुच दुर्घटनाओ
सीमा को पार करके, कुछ इधर उसकी ओर आ रहे हैं, या उस
हाथ पकड़कर उसे भी परे दुर्घटनाओं की सीमा के अन्दर ले जा
हैं?

लगा—शायद इसी तरह वह 'उस' के साथ एकलम्बी ड्
पर जाया करते होंगे...इसी तरह चाय की थरमस उसके साथ
करती होगी...

मुक्ता ने चौंककर अपने हाथों की ओर देखा—विश्वास
हुआ कि इन नये हाथों से क्या सचमुच उनके पुराने दिनों को थ
जा सकेगा?

कांपते हुए हाथों से मुक्ता ने अलमारी के निकट जा
अलमारी को खोला और वह चाभी निकाली, जो मां ने जाते स
दी थी और कहा था—'यह पहली के ट्रंक की चाभी है। तेरा जी
तो खोलकर चीज़ें निकालकर बरत लेना, जी करे तो किसी क
देना...' और मुक्ता ने दबे पांव स्टोर में जाकर वह ट्रंक खो
जिसमें पहली के कपड़े रखकर वह ट्रंक बंद कर दिया था...

कई साड़ियां मुक्ता ने हाथों में उठाईं, फिर रख दीं, यह
पता चल रहा था, नये हाथों से पुराने दिनों को पकड़नेके लिए
धागों का सहारा लिया जा सकता है...

एक साड़ी आंखों को अलग-सी लगी—रंग-बिरंगी प
लकीरों के जाल में लिपटी हुई। खयाल आया—शायद यह वही
जो कुसुम ने बताया था कि वह फ्रांस से लाए थे।

मुक्ता ने ट्रंक को बन्द करते हुए वह साड़ी बाहर रख
और गुसलखाने में नहाने के लिए चली गई। और नहाकर
साड़ी को पहनते हुए उसे अजीब-सा एहसास हुआ—जैसे
कपड़े नहीं, जन्म बदल रही हो...

अभी अंधेरा था, जब साड़ी में चाय और बाकी चीज़ें रखवाकर, मुक्ता ने दिलीप राय को जगाया। जागने और तैयार होने के वक्त दिलीप राय ने शायद ध्यान नहीं दिया; लेकिन बाहर आकर, गाड़ी में बैठते समय एक बार उन्होंने मुक्ता की ओर देखा, तो मुक्ता को लगा—उनकी नज़र साड़ी के पल्ले पर अटक-सी गई है।

पर दिलीप राय ने कुछ नहीं कहा। चुपचाप गाड़ी चलाने लगे, और मुक्ता गाड़ी की खिड़की से दिल्ली के खंडहरों को देखती एक विचार में उतर गई—न जाने इस दिल्ली ने मेरे भीतर कितनी बार बनना-उभरना है और कितनी बार खंडहर होना है...

१५

डॉक्टर ने मुक्ता का मुआयना किया तो पहली बधाई दिलीप राय को दी, दूसरी मुक्ता को।

यह वही डॉक्टर थी, जिसके हाथों दिलीप राय के पहले बच्चे का जन्म हुआ था। उसे उस बच्चे की मृत्यु का भी पता था, इसलिए उसकी आंखों में इस समय बधाई की पहली आवश्यकता दिलीप राय को थी।

दिलीप राय को एक तसल्ली का एहसास हुआ, पर डॉक्टर के जाने के बाद जब उन्होंने मुक्ता को आंखों में भरकर देखा, लगा—यह तसल्ली का एहसास उन्हें इतना अपनी खातिर नहीं हुआ था, जितना मुक्ता की खातिर...

जिस दिन मुक्ता ने घर की पहली औरत के कपड़े निकालकर पहने थे, दिलीप राय ने कहा कुछ नहीं था, पर उस दिन से एक चिंता उनके मन में उतर गई थी कि मुक्ता इस घर में आई है, पर अपना अस्तित्व पहनकर नहीं...

आज उन्होंनें मुक्ता को आंखों में भरकर देखा तो मुक्ता मुस्करा पड़ी, पर क्षण-भर की तसल्ली के बाद दिलीप राय ने

महसूस किया कि मुक्ता की मुस्कराहट जैसे किसी खंडहर में से निकलकर सामने आई हो—बीते काल की धूल में लिपटी हुई, और किनारों से घिसी-टूटी हुई...

"तुम खुश नहीं हो?" खुशी के पहले क्षण में ही दिलीप राय ने अचानक मुक्ता से पूछा; पर अपने शब्द ही कानों को अजीब लगे।

"खुश हूं,"...मुक्ता ने कहा, पर जल्दी से जैसे पांव स्थिर न हों...

दिलीप राय ने एक संजीदगी से मुक्ता की इस घबराहट को झेल लिया, और उसका और अपना ध्यान नई ओर मोड़ना चाहा, पूछा, "तुम्हारा क्या जी करता है, लड़की हो या..."

"लड़का..." मुक्ता ने जल्दी से कहा।

दिलीप राय हंस पड़े। कुछ कहा नहीं, पर सोचा—हर औरत यही कहती है, पता नहीं क्यों? औरत को अपनी ज़ात अच्छी नहीं लगती।

कहा, "अगर लड़की हुई तो?"

"हो ही नहीं सकती।"

"क्यों?"

"आप नहीं जानते।"

दिलीप राय हंसने लगे, पर मुक्ता नहीं हंसी। उसने सिर्फ एक उछलती नज़र से उधर देखा, जिधर कमरे में बच्चे की तस्वीर पड़ी हुई थी।

"मां को खत लिखूं? बहुत खुश होगी।"...दिलीप राय ने कहा तो मुक्ता चौंक-सी गई, बोली, "नहीं, मुझे डर लगता है।"

"डर? काहे का?"

"पता नहीं...शायद यह कि यह सच नहीं...नहीं, खत मत लिखना..."

दिलीप राय फिर हंस पड़े, पर कहने लगे, "अच्छा, नहीं लिखता, अगले हफ्ते लिखूंगा, या उससे अगले हफ्ते। जब भी तुम

कहोगी।"

फिर दो हफ्ते भी बीत गए, पर खत लिखने का समय आकर भी नहीं आया। मुक्ता अचानक पीड़ा से तड़पने लगी, और डॉक्टर ने आकर कहा कि इस बच्चे को बचाया नहीं जा सकता।

हलका-सा ऑपरेशन करना पड़ा, पर मुक्ता को पीड़ामुक्त करके भी डॉक्टर जानती थी कि इस समय एक तसल्ली और हमदर्दी की आवश्यकता जितनी मुक्ता को है, उतनी दिलीप राय को नहीं। इसलिए डॉक्टर ने बड़े अपनत्व से मुक्ता के लिए समय लगाया और विश्वास दिलाना चाहा कि आगे के लिए कोई सहम उसके लिए अन्दर न बैठे। मुक्ता की मां उस दिन पास रही थी। उसने घबराकर डॉक्टर से पूछा था कि एक बार अगर ऐसा हो जाए तो आगे भी सचमुच हमेशा ऐसे ही होने का खतरा होता है क्या? इसलिए डॉक्टर ने मुक्ता को, और उसकी मां को. तसल्ली देते हुए इकरार किया कि फिर वक्त आया तो मुक्ता की सारी हिफाजत पहले दिन से ही अपने हाथ में ले लेगी।

मुक्ता ने सिर्फ सुना, पूछा कुछ नहीं...शायद सुना भी नहीं। डॉक्टर चली गई, मां चली गई, तो उसने सिर्फ दिलीप राय से कहा, "आप बहुत उदास हैं?"

दिलीप राय ने कुछ चौंककर मुक्ता की ओर देखा। इस समय वह पीली ज़र्द-सी पलंग पर पड़ी हुई थी, और उसका यह प्रश्न कुछ स्वाभाविक हो सकता था, लेकिन दिलीप राय को स्वाभाविक नहीं लगा। लगा ये शब्द आज के नहीं, ब्याह की पहली रात के, यहीं पलंग के पास पड़े हुए हैं...पहली रात पहले शब्द मुक्ता ने उनसे यही कहे थे...

कुछ समझ में नहीं आया तो दिलीप राय पलंग की पट्टी पर मुक्ता के पास बैठ गए, और उसके एक हाथ को अपने हाथों में लेकर उसकी ओर देखने लगे।

देखा—मुक्ता की आंखों में पानी भर आया है...

''ऐसे ही होना था, मुझे लगता था...'' मुक्ता ने धीरे से कहा और एक ठण्डी सांस भरी, जैसे एक अन्तिम निर्णय अपने ही मुंह से अपने कानों को सुनाया हो।

''मुक्ता!...'' दिलीप राय ने मुंह से निकाला तो मुक्ता ने एक आराम की सांस लेकर उनकी ओर देखा। लगा—इस पीड़ा की घड़ी में वह मुक्ता के कुछ निकट आ गए हैं...इसीलिए शायद उन्होंने आज मिस दिल्ली नहीं कहा...आज पहली बार मुक्ता कहा है।

पर दिलीप राय उसी तरह हैरान उनकी ओर देख रहे थे, शायद उसकी ओर नहीं, सिर्फ इन शब्दों की ओर—'ऐसे ही होना था, मुझे लगता था...'

''क्या सोच रहे हैं?...मुक्ता ने अचानक पूछा।

''तुम्हे ऐसा क्यों लगता था मुक्ता? शायद कुछ है, जो तुम मुझे नहीं बता रही हो!''

दिलीप राय का प्रश्न सीधा मुक्ता से टकरा गया तो मुक्ता ने घबराकर अपना हाथ उनके हाथों से खींच लिया।

कुछ बच्चे के अस्तित्व से भी अधिक, जैसे मुक्ता के शरीर में से निचुड़ गया और वह बिलकुल बेजान-सी कमरे की दीवारों की ओर देखने लगी...

''मुक्ता!''

दिलीप राय ने मुक्ता के होंठों के पास झुककर ऐसे आवाज़ दी, जैसे कोई कदम-कदम दूर जाते हुए किसी को ज़ोर से आवाज़ देकर रोकना चाहे।

मुक्ता का मन ठिठककर खड़ा हो गया—परे जाने के लिए भी कोई जगह नहीं थी, इसलिए वहीं खड़े होकर, कांपकर, दिलीप राय की ओर देखने लगा...

दिलीप राय को याद आया—आज से कई दिन पहले, उस दिन, जिस दिन डॉक्टर ने पहली बार बधाई दी थी, उस दिन भी मुक्ता ने कहा था—'नहीं, मां को खत मत लिखना...मुझे डर लगता है...'

लगा—कुछ है, जो मुक्ता को भीतर ही भीतर तोड़ रहा है...शायद वही कुछ आज उसे इस तरह लहू-लुहान कर गया है...

दिलीप राय ने धीरे से मुक्ता के माथे पर हाथ रखा, पर मुंह से कुछ नहीं कहा।

पर दिलीप राय की हथेली के स्पर्श से मुक्ता के माथे की नस पिघल गई, आंखों में पानी बनकर आ गई...

दिलीप राय ने उसकी आंखों से झर आए पानी को अपने पोरों से पोंछा और उसे कुछ हंसाने का जतन करते हुए कहा, "तुम औरतों को कई बातों का आप ही आप किस तरह पता चल जाता है? जानती हो, मां क्या कह रही थीं?"

"क्या?"

"कि यह जरूर लड़का था, तभी चला गया...लड़की होती तो ऐसा कुछ नहीं था...लड़कियों की बारी इस तरह नहीं हुआ करता...सो, अगली बार तुम अभी से सोच लो कि लड़की होगी, और इसलिए फिर ऐसे नहीं होग ...रोने की क्या बात है?"

"नहीं, अगली बार भी लड़की नहीं होगी..." मुक्ता के मुंह से यह निकला तो दिलीप राय फिर चौंक गए, पर हंसते हुए पूछने लगे, "तुम औरतों को यह किस तरह पता लग जाता है? इस बार भी तुम कहती थीं..."

"मुझे मालूम था।"

"कैसे?"

"यह राहुल था।"

दिलीप राय ने मुक्ता के मुंह से अपने मरे हुए बच्चे का नाम सुना तो कांपकर मुक्ता की ओर देखा।

—सचमुच यह राहुल था...मुक्ता के मन ने छलक जाना चाहा, कहना चाहा कि मैं जब यहां आई थी तो मेरी गोद में उसकी लाश पड़ी हुई थी...वही रोज़ हमारे पलंग पर होती थी...हम दोनों के बीच...अब वही मेरे भीतर थी...

पर मुक्ता की जीभ जैसे सुन्न हो गई, यह भयानक सारा कुछ

जीभ पर जम गया...

''मुक्ता!'' दिलीप राय ने घबराकर मुक्ता का सिर अप
घुटनों पर रख लिया, फिर प्यार से कहा, ''यह पागलपन है मुक्त
तुम यही सोचा करती थीं? तुम्हें इसीलिए डर लगा करता था?

मुक्ता ने ज़र्द होकर दिलीप राय की ओर देखा, फिर कांपत
हुई सी कहने लगी, ''वह इसीलिए मर गया था, क्योंकि मैंने चाह
था।''

''पगली! तुमने तो उसे...''

पर मुक्ता दिलीप राय की बात को सुने बिना कहती गइ
''नहीं, यह मैंने सोचा था कि वह न हो...तो वह मुझसे गुस्से होक
चला गया...वह इसीलिए...इसलिए...''

दिलीप राय ने मुक्ता के कांपते हुए होंठों को हथेली से चु
करना चाहा, पर मुक्ता के मन में जो कुछ था, वह सारे का सार
दिलीप राय की हथेलियों पर आ पड़ा, ''आपने मुझे बच्चे क
खातिर चाहा था, अपने लिए नहीं...पर मैं आपको चाहत
थी—सारा, किसी और का नहीं...बच्चे का भी नहीं...इसीलिए मैंन
चाहा, वह न हो...''

तुमने इसीलिए कई महीने ब्याह के लिए हां नहीं क
थी?''...दिलीप राय ने बड़े धीरे से संभली हुई आवाज़ में पूछा

''हां, इसीलिए...और सिर्फ इसलिए नहीं कि आपका एव
बच्चा था, इसलिए भी, कि पहले मेरी जगह पर कोई औ
थी...अब नहीं थी, पर पहले थी...क्यों थी...''

'वह मेरी बेवफाई थी।'' दिलीप राय ने एक बार हंसक
कहा, फिर पलंग से उठकर, पलंग के पास खड़े होकर मुक्ता क
ओर देखते हुए गंभीर हो गए, कहने लगे, ''तुमने सचमुच मुझस
इस तरह प्यार किया है मुक्ता?''

और फिर वह मुक्ता के पास झुककर कहने लगे, ''खतरनाव
औरत! जब तुझे सोचा था, तब यह मैंने नहीं सोचा था...''

मुक्ता ने अपनी कांपती हुई बांह उनके गले में लपे

दी—कहा, ''पर मेरी मुहब्बत में यह गुनाह क्यों शामिल हो गया? मैं आपको पाना चाहती थी, नहीं चाहती थी कि आप किसी और के भी हों, बच्चे के भी नहीं, पर मैं बच्चे की मौत नहीं चाहती थी...यह चाहती थी कि वह न हो, पर यह नहीं चाहती थी कि वह मर जाए...''

दिलीप राय ने अपने हाथों से जैसे अनन्त के क्षण को छू लिया, मुक्ता की मुहब्बत को बच्चे का अस्तित्व स्वीकार नहीं था, पर उसकी मृत्यु भी स्वीकार नहीं थी, और इस बात को जितना मुक्ता ने भी नहीं पाया था, वह दिलीप राय ने पा लिया...

मुक्ता ने फिर कहा, ''मैं अपने और आपके बीच वह बच्चा नहीं चाहती थी, वह नहीं रहा, पर उसकी जगह उसकी लाश आ गई...रोज़, यहां पलंग पर...''

दिलीप राय ने मुक्ता के होंठों पर अपना हाथ रख दिया, कहा, ''नहीं मुक्ता! तुम्हारे और मेरे बीच और कोई चीज़ नहीं है। मेरा अतीत शायद था, पर अब नहीं है...

मुक्ता सवेरे जागी तो देखा—कमरे में रोज़ वाली जगह पर वह तस्वीर नहीं थी, जो दिलीप राय ने किसी के भी कहने पर कमरे से उठाने नहीं दी थी...

मुक्ता ने धीरे से उठकर बराबर के कमरे की अलमारी टटोली तो वह तस्वीर मिल गई। उसने तस्वीर को फिर अलमारी में से उठाया, उसे पोछा और कमरे में उसी जगह पर रख दिया, जहां वह हमेशा रखी रहती थी। दिलीप राय ने तस्वीर को फिर उसी जगह पर देखकर मुक्ता की ओर देखा तो मुक्ता हंस पड़ी, ''यह अब मेरे भी हैं। आपका अतीत सबका सब मेरे अतीत में शामिल हो गया है, मेरा बन गया है, मेरा अपना...''

स्टार बुक्स



अमृता प्रीतम

स्टार बुक्स